वर्ष ७, अंक १०

श्रीकृष्णाय नमः

आषाढ पूर्णिमा १९८९

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	... ...	२६०
२.	सन्त फ्राँसिस (ले० श्री० डब्ल्यू ओ० फिच	... ...	२६०
३.	आत्म विश्वास (ले० पं० नारायण जी गोविन्द जी	... ...	२६३
४.	तन मन की स्वच्छता (ले० श्री स्वाध्यायी	... ...	२६५
५.	भगवद्भक्ति (ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	... ...	२६७
६	तपस्वी मुहम्मद अली तरमोजी (ले० श्री कृष्ण गोपाल जी माथुर	... ...	३०३
७.	आह्वान (रचियता श्रीमती ब्रजकुमारी	... ...	३०४
८.	योग साधन (ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी	... ...	३०४
९.	आत्मानुभूति (ले० श्री महात्मा राम	... ...	३०६
१०.	क्या (ले० श्री बी० एल० सराफ	... ...	३१२
११.	यौगिक जगत (ले० श्री दामोदर सावलेकर	... ...	३१३
१२.	प्रार्थना (ले० श्री यमुना प्रसाद श्री वास्तव	... ...	३१५
१३.	वर्षा ऋतु आगमन (कविता) (ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	... ...	३१७
१४.	यज्ञ का फल (ले० श्री स्वामी ओमानन्द जी	... ...	३१७
१५.	आनन्द का उपाय (ले० श्री गोपाल प्रसाद शर्म्मा	... ...	३१८
१६.	श्रुतिसार		३१९
१७.	भजन		३२०

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषद्		।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।।)
६	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=।।)
७.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	।)
१०.	सारसंग्रह	,,	।)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१२.	मनुस्मृति सार	,,	=।)
१३.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१४.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१५.	भगवदंक	,,	।।।)
१६.	गवांक	,,	१)
१७.	महात्मांक	,,	१)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजना चाहिये।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक समानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मृग-उद्धार

GITA PRESS, GORAKHPUR

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आसाढ़ पूर्णिमा, जौलाई १९३३ | अंक १० पूर्ण संख्या ८२

वेदोपदेश

असुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसाऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

जो लोक अदर्शनात्मक ज्ञान से आवृत हैं वे असुरों के समान प्रसिद्ध हैं। और जो आत्म हत्यारे (आत्मा को उद्धार न करने वाले हैं) वे उन लोकों को मर कर प्राप्त होते हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

यह आत्मा अचल है विकार रहित है मन से वेगवत्तर है इसको देवता (चक्षु आदि) इन्द्रियें नहीं प्राप्त होते। मन आदि से पूर्व ही सब में व्यापक है वह दौड़ता हुवा सबको उलंघन कर जाता है इसमें मातरिश्वा कर्मों के फलों को रखता है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

वह आत्मा चलता है और निश्चल है। वह ज्ञानी के समीप है और अज्ञानी से दूर है। वह जगत् के आभ्यन्तर और बाहर सर्वत्र है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥

जो ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है और समस्त भूतों में आत्मा को देखता है वह किसी की निन्दा नहीं करता।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

जिस समय ज्ञानी के लिये सब कुछ आत्मा ही होगया उस काल में एकत्व अर्थात् अभेद देखने वाले को शोक मोह नहीं रहते।

सन्त फ्रांसिस

[ले० श्री० डब्ल्यू ओ० फिच, एम० ए०]

इटली देश में असीसी स्थान का निवासी फ्रांसिस बर्नेडन एक धनाढ्य सौदागर का पुत्र था। वह अपने पिता के साथ वणिज व्यापार का कार्य्य करता था ईश्वर ने उसको अद्भुत, व अनोखा सौन्दर्य प्रदान किया था, अतः वहां के सुन्दर और फैशनेबल नवकों में वह प्रधान था, परन्तु वह लापरवाह और भोग विलास इच्छुक था, तथापि यह किसी भी कारण से नहीं कहा जा सकता कि उसके आचरणों में किसी तरह की बुराईयां थीं। २५ वर्ष की अवस्था में फ्रांसिस को अति कष्ट कारक व्याधि हुई, जिसने उसका ध्यान अति गम्भीर विषयों की ओर आकर्षित कर दिया। उसने द्रव्य पैदा करने के ध्येय, और विलस का मार्ग त्याग करउसकी जगह कष्टों, और युद्ध के दुःखों को सहने का भार अपने ऊपर लिया। १२ वीं शताब्दी के अन्त में देश अति दुःखित और अनाथ अवस्था में था, अतः वहां पर उस समय शुभावसर की न्यूनता न थी। फ्रांसिस बर्नेड़न अधिक दूर न गया था कि रुग्ण होकर वापिस असीसी बिना किसी शुभ कार्य के पूर्ण किये ही, लौटना पड़ा। लौटते हुये उसके मार्ग के एक दृश्य ने उसमें ईश्वरीय भक्ति में श्रद्धा उत्पन्न की उन्होंने तभी से रोगियों की सेवा करनी आरम्भ करदी। इस से अपनी तरुणावस्था में निष्काम उदारता, और पुण्य करने के कारण विख्यात हो गये, परन्तु वह कुष्टियों से सर्वदा घृणा करता था। एक दिन जब कि वह अश्वारो-

हित था, उसने एक कुष्टि व्यक्ति को देखा। उसका शिष्य एस बोनेवैंचरा ने लिखा है, "कि उन्होंने विचार किया यदि वह ईसा का शिष्य है, तो उसको अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।" वह तुरन्त अपने घोड़े से नीचे उतरा और कुष्टि से मिलने गया और उसको छाती से लगा लिया जब अनाथ पुरुष ने अपना हाथ दान लेने के लिये फैलाया तो उन्होंने उसके हाथ को मुख से स्पर्श किया और द्रव्य से उस के हाथों को पूर्ण कर दिया। उसी समय से वह औषधालयों में कुष्टियों के देखने के लिये भ्रमण करने लगे। उसने उन औषधालयों को केवल द्रव्य ही नहीं दिया परन्तु शारीरिक सेवा भी उनके लिये प्रदान की। अन्त में उनके अस्वच्छ मुखों को सर्वदा अपने मुख से स्पर्श करता था। यह यूरोपीय देशों में स्नेह प्रगट करने की रिवाज है।

परन्तु सन्त फ्रांसिस को अभी और भी द्रव्य की निस्सारता के विषय में शिक्षा ग्रहण करनी थी। खण्डित गिरजों को देख कर उनको दारुण कष्ट होता था अतः एकबार एक खण्डित गिरजे की दशा को देख कर उन्होंने अपने पिता के कपड़ों को बेच कर जो द्रव्य प्राप्त हुवा उसको उसने पुजारी को दे दिया जिससे वह गिरजे को फिर बनवा सके और मजदूरों को मजदूरी दे सके। उस सज्जन पुजारी ने जब द्रव्य प्राप्ति की कथा सुनी तो उस द्रव्य को स्पर्श तक न किया परन्तु फ्रांसिस को अपने पास रहने की आज्ञा दे दी। उसका पिता क्रोधित हुवा आया और फ्रांसिस को वापिस घर ले गया, उसको निज गृह में ही बन्दी बना कर रखा। कारागार से मुक्त होने के पीछे फ्रांसिस ने वह द्रव्य, वापिस अपने पिता को दे दिया, जो के पुजारी के घर में रक्खा हुवा था! पुजारी ने उस द्रव्य को ऐसा समझा जैसे वह कूड़ा करकट हो (अनावश्यक वस्तु हो)। फिर फ्रांसिस ने दुबारा उस गिरजे को स्वयं बनाने का निश्चय किया। और जहां कहीं सामान ईंट, पत्थर आदि मिलता स्वयं लाते। इस प्रकार उन्होंने अपने हाथों उस गिरजे की मरम्मत की।

यह केवल फ्रांसिस जीवन का प्रारम्भिक शुभ कर्म था शनैः २ उन्होंने अपने जैसे स्वभाव वाले मनुष्यों को इकट्ठा करके एक नई धार्मिक श्रेणी स्थापित की। ईसाई पन्थ में उस समय बहुत से साधु थे जो श्रेणी बनाकर रहते थे और कोई भी साधु अपना ख़ास सामान न रखता था, परन्तु सब श्रेणियाँ अपना इकट्ठा सामान रखती थीं। वे अपना काल ईश्वरीय प्रार्थना, विद्याध्ययन, और कुछ निष्काम कार्यों में व्यतीत करते थे, परन्तु उनका मुख्य उद्देश्य आत्मप्राप्ति का था, जिस की प्राप्ति करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। उन साधुओं का भोजन यद्यपि भद्दा और स्वल्प होता था, तदपि वह निश्चित, और नियम से था पीछे इन श्रेणियों में बहुत सी बुराइयां पैदा हो गई, बहुत से साधु स्वार्थी और विषय भोगी हो गये। तब फ्रांसिस और उसके मित्रों ने, दूसरों की आत्माओं पर विजय प्राप्त करने का अपना उद्देश्य बनाया और जो कुछ प्रजा उनको देती वे उन चीजों पर ही अपना निर्वाह करते थे।

फ्रांसिस के जीवन वर्ग में दरिद्रता केवल अनिच्छित वस्तु नहीं थी, वह सर्वदा हृदय से उसके लिये इच्छुक रहते थे वह इसको अपनी पत्नि के तुल्य बताते हैं। प्रथम दरिद्रताने, दूसरे ईश्वरीय नियमों पर अनुसरण करने से उन का चित्त संसारिक कार्यों से निवृत्त हो गया! इन दोनों बातों ने ही इटली भाषा में कविता रचने

में सन्त फ्रांसिस मुखिया बना दिया। इस समय तक धार्मिक कवितायें लैटिन तथा ग्रीक भाषा में थीं। इटैलियन भाषा प्रान्तीय भाषा ही थी जिस को कि वहाँ के निवासी बोलते थे, और फ्रांसिस उस भाषा में ही वहाँ के मनुष्यों का चित्त हरलेता था। अधिक दरिद्रता ने नई श्रेणी को विस्तृत करने में हाथ बटाया। उनको नई श्रेणियाँ खोलने में न तो रुपये की, न भूमि की आवश्कता थी। अतः एक या दो आदमी गावों में प्रचार करने के लिये जाते, और जिनका हृदय चाहता वे बिना किसी कष्ट के उनके साथ मिलजाते। अतः इस नई श्रेणी से बहुत शीघ्र प्रचार होगया।

उसी समय में एक सुन्दर अच्छे कुलोत्पन्न स्त्री ने जिस का नाम 'एस० क्लेर' था उसने स्त्रियों की श्रेणी भी प्रारम्भ करदी परन्तु दरिद्रता के कठिन नियम का पालन करना, दूसरे एकत्व भाव से रहना पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये अधिक कठिन कार्य्य है इस सुशील स्त्री के साथ फ्रांसिस ने आत्मिक मित्रता उत्पन्न की वे एक दो दफा ही मुश्किल से आपस में मिले थे, तथापि वे एक दूसरे की शारिरिक शक्ति और कार्य की सफलता के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते रहते थे १२२१ में सन्त फ्रांसिस ने तीसरा आश्रम ग्रहण किया (जिसको भारत वर्ष में संन्यास आश्रम कहते हैं) इस आश्रम में सादा जीवन उपवास, ईश्वरीय प्रार्थनादि उनकी अपेक्षा जो कि ग्रहस्थ आश्रम में रहते थे चाहें वे मरद हों, या स्त्रियां, विवाहित हैं या अविवाहित अधिक होती थी। उस समय जबकि यह नियम बना-रखा था कि जिस स्त्री या पुरुष का मुख्य उद्देश्य पूरा ईसाई बनने का है उनको चाहिये कि सांसारिक व्यवहारों को त्याग कर के साधु या संन्यासी होजाना चाहिये। सन्त फ्रांसिस ने गृहस्थ आश्रम की पवित्रता, और श्रेष्ठ धार्मिक विचारों को सांसा-रिक व्यवहारों के साथ मिलाने की आवश्कतायें प्रगट कीं। इसके अतिरिक्त ईश्वरीय चीजों में अति स्नेह होने से फ्रांसिस धार्मिक कठिन नियमों को पालन करने में केवल क्षुधा पिपासा शीत उष्णता को सहन ही न करते थे बल्कि उन का स्वागत भी करते थे। वह समझते थे कि जो कुछ मैं कर रहा हूं मानो यह सब कुछ ईसा के लिये ही है। यद्यपि उनका जीवन अस्वस्थ था। तथापि उस समय से जबकि वह मलेरिया की व्याधि से बीमार हुये तब से उन का चित्त गम्भीर विषयों की तरफ आकर्षित होगया। मलेरिया व्याधि उन दिनों इटली में एक (प्रचलित) बीमारी थी। आरम्भिक दिनों में सन्त फ्रांसिस के मित्रों को धार्मिक नियम बनाने वाले गिरजा के मुखियाओं, पोपों और धर्माध्यक्षों के कारण लोकापवाद सहना पड़ता था परन्तु फ्रांसिस निराश नहीं हुवा धनाढ्यों और करदेने वाले जागीरदारों के विरुद्ध उन्होंने सफलता प्राप्त करने की तजवीजें सोचीं उनके साथियों ने मनुष्य मात्र की, दरिद्रता में मनुष्यों की सेवा की। अतः फ्रांसिस का नाम समस्त यूरोप में प्रसिद्ध होगया! जब फ्रांसिस बड़े शारिरीक दुःख में मरा, तब उस के मुख में से परमात्मा के गीत निकलते थे उन का ध्यान ईश्वर की ओर था ऐसा कोई राजा या महाराजा, या सम्राट् नहीं हुवा जिसने इतना प्रभाव मनुष्य मात्र पर डाला हो जितना कि इस छोटे, और दरिद्री ईसा के सेवक ने डाला है।

आत्म विश्वास

(ले० श्री पं० नारायण श्रीगोविन्द जी नावर)

स्वामी विवेकानन्द का कथन है–"मुझको ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है जिनके पट्ठे लोहे के समान हों, फौलाद के स्नायुतन्तु और वज्र के मन हों। क्षत्रियों की वीरता और ब्राह्मणों का ब्रह्मतेज जहाँ एकत्रित हो ऐसे नर-रत्नों की मुझको आवश्यकता है।"

'आत्म-विश्वास' सामर्थ्य, शक्ति और यश सम्पादन करने की कुञ्जी है। आपने आज तक जो कुछ किया है या इस समय कर रहे हैं। इसकी चर्चा आत्म-विश्वास नहीं करता, किन्तु आप जो कुछ भविष्य में कर सकते हैं उसे बतलाता है। आपके आत्म-विश्वास को देख कर आपकी भावी कर्तृत्व शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।

आपको आत्म-विश्वास के मार्ग से हटाने वाला, पूर्ण आत्म-विश्वास से आरम्भ किये हुए कार्य में असफल होने का भय दिखाने वाला मनुष्य निस्सन्देह आपका शत्रु है। मनुष्य जाति की उन्नति ऐसे ही स्त्री-पुरुषों से हुई है जिनमें अनन्त आत्म-विश्वास भरा हुआ था। एक समय लोग जिन बातों को असंभव मानते थे और हास्यकारक समझते थे उन्हीं को आत्म-विश्वास के बल से कार्य रूप में परिणत करने वाली विभूतियों का यदि दुनियां में निर्माण न होता तो मनुष्य समाज अब तक जगत् की बालावस्था की तरह शरीर में राख मल कर जंगली पशुओं के पीछे दौड़ने वाले मनुष्यों से भरा हुआ दिखाई देता।

"यदि ऐसा होता–यदि मुझ में अमुक गुण होता–यदि मुझको ऐसा अवसर मिलता–तो मैं ऐसा काम कर दिखाता कि संसार मेरी प्रशंसा करने में दंग रह जाता और मैं लक्षपती बन जाता।" ऐसे मनुष्यों की असफलता का मुख्य कारण आत्म-विश्वास की कमी ही है। संसार में अकल्पित कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक काम में उसके महत्व के अनुसार कारण भी होता है। उद्गम की ऊंचाई की अपेक्षा पानी कदापि ऊंचा नहीं चढ़ सकता उसी प्रकार मनुष्य शरीर में व्यक्त या अव्यक्त कर्तृत्व शक्ति अनुसार उसके हाथ से कार्य हुए बिना नहीं रहता–यह भी मानस शास्त्र का एक अनुभव सिद्धान्त है। मानसिक आकांक्षा, आत्म-श्रद्धा और प्रयत्न के संकलित उद्गम की अपेक्षा यश सिद्धि कदापि उच्चकोटि की नहीं हो सकती या कम भी नहीं हो सकती। कर्तृत्व शक्ति चाहे जितनी हो, बुद्धि चाहे जैसी भी कुशाग्र हो और शिक्षा भी चाहे जितनी श्रेष्ठ प्राप्त की हो–आत्म विश्वास बिना सब व्यर्थ है–यश प्राप्ति कदापि इसके बिना नहीं हो सकती।

आपका जीवन सफल और इच्छाएं पूर्ण होने के लिये जिन गुणों की आवश्यकता है वे सब गुण आप में जन्म से ही बीज रूप से मौजूद हैं। केवल आपको दीर्घ परिश्रम करके धैर्य तथा चित्त संस्कार की सहायता से उसे व्यक्त और विकसित करने की आवश्यकता है। लोग आप से चाहे कुछ कहें–आप के हेतु–आपके विचार और आकांक्षाओं को देख कर चाहे वे हंसते रहें–आप अपना आत्म-विश्वास कदापि न डगने दें। कैसे भी मनुष्यों से काम पड़े, कैसी ही आपत्ति आ पड़े आप अपने विश्वास को जरा भी डिगने न दें। चाहे आपकी सम्पत्ति, आपका आरोग्य और आपका आत्म सम्मान भी नष्ट हो जाय तो भी कोई चिंता नहीं।

जब तक आत्म-विश्वास आपका साथी है तब तक निश्चय समझिये—आज न सही कल, कभी न कभी आपको अलौकिक सिद्धि प्राप्त होगी और आप संसार को आश्चर्यान्वित कर देंगे। लोग विनम्र भाव से आपकी प्रशंसा और आदर करेंगे।

एक कहता है मैंने शिक्षा बहुत कम पाई है इस कारण से मैं इस तरह ठोकर खाता फिरता हूं। दूसरा कहता है कि मैं जी तोड़ परिश्रम करता हूं तो भी मेरे वेतन में वृद्धि नहीं होती, मैं बड़ा अभागा हूं। तीसरा कहता है क्या करूं ? मेरे माता-पिता ने मुझको शिक्षा प्राप्ति का अवसर ही नहीं मिलने दिया। किन्तु ये सब केवल बहाने हैं। केवल विद्वत्ता, शिक्षा, चातुर्य ही यश प्राप्ति के साधन नहीं हैं। बहुत से जग प्रसिद्ध मनुष्य आप को मिलेंगे जिन्होंने मदरसे का द्वार भी न देखा हो या वे विद्यार्थी जीवन में कभी प्रविष्ट न हुए होंगे, ऐसे मनुष्यों की सिद्धि का कारण उनका आत्म-विश्वास ही है। अन्तःकरण के अन्तस्थल में छिपे हुए गुप्त सामर्थ्य को प्रकट करने का अद्भुत, सच्चा और सहज साधन आत्म-विश्वास ही है।

आत्म-विश्वास क्षुद्रमनोवृत्ति दर्शक उन्मत्तता या अहंकार नहीं है। आत्म-विश्वास का उद्गम आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने और अंगीकृत कार्य में सफलता प्राप्त करने की उत्कट लालसा और उसे करने की आंतरिक प्रेरणा में ही है। यदि हम में पूर्ण आत्म-विश्वास है—काम कैसे करना चाहिये और धैर्य से तत्पर कैसे रहना चाहिये यह सब हम जानते हैं तो यश सिद्धि के समय हमारी विद्वत्ता या गुण का प्रश्न नहीं रहता। प्रश्न केवल आत्म-विश्वास, तत्परता, दक्षता और दीर्घ परिश्रम का ही रह जाता है।

विचार कीजिये—रामा, पेशवाओं का एक साधारण नौकर था, वह बिलकुल अशिक्षित था। परिस्थिति और बुद्धि आदि भी अनुकूल न थे। बेचारा, 'पीर बबर्ची भिश्ती खर' था किन्तु पेशवा के कटु शब्दों का तीव्र अंजन आंखों में पड़ते ही उसका आत्म-विश्वास जागृत हो गया। वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को जागृत कर सका और बबर्ची से बड़ा विद्वान् आचार्य बन गया। आश्चर्य की बात तो अवश्य है; किन्तु ऐसे आश्चर्य संसार के इतिहास में इतने भरे पड़े हैं कि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने वाले इसको मानवी सामर्थ्य की सहज लीला समझते हैं।

जो दृश्य मानवी या स्थूल दृष्टि में दिखते हैं वे ही आत्म-विश्वासी मनुष्य को स्पष्ट दिखाई देते हैं। आत्म-विश्वास हमारे हृदय का भविष्य-वक्ता है। हमारे जीवन-क्रम में हमारे साथ रह कर मार्ग-दर्शन और उत्साह-वर्द्धन का कार्य करने वाला देवदूत यही है। निराशावस्था में धैर्य, मेरु को थर्राने वाले संकटों और प्रगति मार्ग के गहन जंगल में दूर से स्पष्ट दिखाई देने वाला, उन्नति शिखर की ओर अंगुलि निर्देश करने वाला, नव-जीवनप्रद स्वर्गीय-संगीत गाने वाला और संजीवनी मंत्र ज्ञाता आत्म-विश्वास ही हमारा सच्चा ईश्वरीय मित्र है।

प्रत्येक बालक को बचपन से ही सिखला देना चाहिये कि दुनियां में जैसे महान् कार्य आज तक किसी ने नहीं किये ऐसे महान् कार्य तुझे करना है। तेरा जीवन-कार्य देवी तथा महत्वपूर्ण है, उसके लिये तैयारी करने में तुझे अभी से लग जाना चाहिये। उससे यह भी कहना चाहिये कि 'त्वमसि निरंजनः' अर्थात् सर्व शक्तिमान, आनन्दमय और ज्ञानमय परमेश्वर भी तू ही है। पूर्ण सामर्थ्य व सुख का तू जन्म से ही स्वामी है। अज्ञान, भय

दुःख की कल्पना को अपने पास बिलकुल न फटकने दे। इससे तेरा आत्म-विश्वास और स्वाभिमान जागृत होकर वह तेरे जीवनको अमर और सार पूर्ण बना देगा

ध्यान रखिए डूबने वाले का पांव हमेशा गहरे पानी में जाया करता है, सब विश्व उसको नीचे दबाया करता है; किन्तु आप मस्तक ऊपर कीजिये–समस्त संसार आपकी स्तुति करने लगेगा सब कठिनाइयां, भय, भीरुता शंका आदि स्वयं ही नष्ट हो जायंगी–विश्व की जीवनी शक्ति का यह त्रिकाउ बाधित नियम है–प्रत्येक कृति, विचार और वस्तु पर घटित होता है।

स्वयं अपनी, अपने प्रत्येक शब्द की, कृति की, विचारों की अवहेलना कभी न करो–उनका महत्व कभी कम न समझो। जीवन में यशस्वी होने के लिए, जीवन कलह में कूदने वाले प्रत्येक युवक को ऐसा विश्वास रखना चाहिये कि–'इस काम में मेरी पूर्ण सफलता होगी।'

'सफलता होना असंभव जान पड़ता है, मेरे व्यवसाय में चढ़ाबढ़ी (Competition) इतनी हो रही है कि भय लगता है कि मैं ऐसी भीड़ में कुचल न जाऊं' ऐसे विचारों को स्वप्न में भी स्थान न दीजिये। ऐसा कहने वाला–ऐसा मानने वाला और ऐसा करने वाला मनुष्य किसी न किसी तरह अपनी आयु कहीं न कहीं गुजार कर, 'हे ईश्वर! अब इन आपत्तियों से छुटकारा दें' ऐसा कहता हुआ इस असार संसार से चल देता है।

मैं एक साधारण मनुष्य हूं–बादशाह यदि चाहे तो मुझे मच्छर की तरह कुचल सकता है। ऐसा विचार क्या शिवाजी के दिल में आया था? बेचारा सुकुमार बालक, जो महलोंमें रहता है। जंगलों में भटक कर दिन कैसे व्यतीत करेगा ऐसा विचार क्या महारानी कौशल्या के हृदयमें कभी आया था?

आपका मन भिखारी है, इसीलिये आप भिखारी और दीन बने हुए हैं अब उठो! आंखें खोल सिंह की तरह गरज कर कहो-'आत्म-विश्वास, श्रद्धा उद्यम करने की प्रीति, सत्संग, अचल शांति और परमात्मा से प्रेम होने पर परम गहन, असंभव और दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति मेरे लिये कठिन नहीं है।'

तन-मन की स्वच्छता

(ले० श्री स्वाध्यायी)

जैसे शारीरिक स्वच्छता स्वास्थ्य रक्षा के लिये आवश्यक है वैसे ही आध्यात्मिक उन्नति के लिये मानसिक पवित्रता भी परमावश्यक है। किंतु मानसिक पवित्रता के बिना केवल शारीरिक शुद्धता से स्वास्थ्य की पूरी रक्षा नहीं हो सकती। शरीर को अपवित्र बनाने वाली बाहर की गन्दगी स्वास्थ्य पर उतना जबरदस्त आघात नहीं करती जितना आन्तरिक मलीनता। महात्मा ईसा का कथन है कि शरीर के अन्दर जो कुछ जाता है वह शरीर को अशुद्ध या मलिन नहीं बनाता, बल्कि शरीर से बाहर जो कुछ निकलता है वही शरीर को, और साथ ही साथ संसार को भी, दूषित बना देता है। मानसिक शुद्धि के लिये शारीरिक शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। शारीरिक स्वच्छता मात्र से कोई उपकार नहीं। आज देश भर में बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जो भोजन, वस्त्र और स्थान की स्वच्छता पर अत्यन्त ध्यान रखते हैं, शरीर को साफ रखने और संभालने में ही दिन रात व्यस्त रहा करते हैं। साफ सुथरा रहना, स्नान, पान, पहिनावा, रहन सहन की स्वच्छता पर ध्यान देना बहुत ही अच्छी बात है, औरों की बात छोड़ दीजिये हमारे लिये तो यह बात विशेष रूप से पालन करने योग्य है; क्योंकि अन्य देशों के मुकाबले में हमारा देश इस विषय में बहुत ही पीछे

पड़ा हुआ है और इसका फल भी हम भोग रहे हैं। अगर हम साफ सुथरे रहते तो बीमारियों के ऐसे शिकार हम न बनते। इसलिये शारीरिक स्वच्छता से उदासीन रहना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारी आशंका यह है कि शारीरिक स्वच्छता विलासिता में परिणत न हो, क्योंकि विलासिता ही सब अनर्थों का मूल है। विलासिता से ही समाज या जाति नष्ट होजाती है। विलासी मनुष्य को न देहका सुख मिलता है और न मन की शांन्ति व आनन्द। कारण यह है कि जो लोग शारीरिक स्वच्छता के लिये प्रचुर समय और धनका अपव्यय करते हैं वे कभी भूले भटके भी मानसिक शुद्धि पर ध्यान नहीं देते। आश्चर्य तो यह है कि शारीरिक स्वच्छता के लिये जितने साधनों की आवश्यकता है मानसिकमें भी उतनी ही; तिस पर भी उसके लाभ पर कोई ध्यान नहीं देता।

यह मानी हुई बात है कि शारीरिक स्वच्छता से जिस आनन्द की उत्पत्ति होती है उससे मानसिक आनन्द कहीं बढ़ा चढ़ा है; यहां तक कि उसके सामने किसी प्रकार के आनन्द की कोई बिसात नहीं; फिर भी संसार की प्रवृत्ति उस ओर बहुत कम है और इसी कारण से संसार में शान्ति के पैर नहीं जमने पाते। हम देखते हैं कि बड़े बड़े राजा रईस और सेठ महाजन सब तरह से स्वच्छ रहते पर भी अस्वस्थ रहते हैं और शिमला, नैनिताल आदि स्थानों की शरण में जाकर शान्ति पाना चाहते हैं; किन्तु शांति किसी पहाड़ या जंगल में नहीं रहती, वह हमारे अन्दर ही है, और साधन के बल से बाहर निकल कर हमारे चारों ओर छा जाती है; फिर हमारे लिये यह कोलाहलमय जगत् भी शान्ति निकेतन बन जाता है। जिस प्रकार सर्वव्यापी ईश्वर को देख न सकने के कारण हम मन्दिरों में दौड़े जाते हैं और हृदय में किसी अन्य वस्तु का ध्यान रखते हुए भी हम मन्दिर की मूर्ति-मात्र को देख कर ही सन्तोष कर लेते हैं, उसी प्रकार स्वास्थ्य की कुञ्जी अपने ही अन्दर रख कर भी हम पहाड़ों और जंगलों में भटकते फिरते हैं। यदि हमारा चित्त शांत नहीं है, यदि हमारा हृदय पवित्र विचारों का लीलास्थल नहीं है, यदि हमारा मन ईश्वर भक्ति में अनुरक्त नहीं है, यदि हमारा मस्तिष्क अनिष्टकारक मनोविकारों की दुर्भावना से मुक्त नहीं है फिर हमारे लिये संसार के, वह चाहे कितना भी स्वच्छ शुद्ध क्यों न हो, किसी कोने में कहीं शान्ति नहीं है। यदि सच्ची शांति पाने की इच्छा है तो सब से पहिले मानसिक पवित्रता पर ध्यान दो अन्यथा सुखानुभव नहीं कर सकते। आंतरिक स्वच्छता के लिये बहुत थोड़े साधनों की आवश्यकता है। विचारों से मानसिक स्वच्छता के लिये सत्संग, स्वाध्याय, सतनाम, सद्गुरु और निरन्तर मनन की आवश्यक है; जैसे शरीर की स्वच्छता के लिये नियमित रूप से स्नान आवश्यक है। इनमें अनुराग उत्पन्न होने पर मनुष्य एकान्त सेवी, शान्ति प्रिय, अध्ययनशील, और भावुक हो जाता है, सदाचार ही उसका अभ्यास हो जाता है, सदिच्छा उसकी संगिनी हो जाती है, शुभचिंतन उसके रोम रोम में रम जाता है। वह इतना ऊंचा उठ जाता है कि नीचे पड़ी कु-वासनायें उसे छू नहीं सकती। वह कभी स्नान नहीं करता तो भी उसका शरीर चमकता रहता है, वह कभी दार्जलिंग या शिमला या शिलांग की सैर नहीं करता तिस पर भी उसका शरीर नीरोग बना रहता है। कुत्सित विचारों और मानसिक विकारों के हिंडोले पर झूलने वाला मनुष्य न तो स्वयं शांति पा सकता है और न संसार को ही शान्ति प्रदान कर सकता है।

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कथा व्रज गोपियों की ।

व्रज गोपिकाओं के चरित्र त्रैलोक्य को ऐसे पवित्र करने वाले हैं कि उनकी कोई उपमा देखने में नहीं आती। यदि गंगा इत्यादि तीर्थों से उनकी उपमा दी जाय, तो वे एक २ देश में स्थित हैं, जो लोग दूर रहते हैं, उनको बड़े परिश्रम से मिलते हैं और पर्व आदि के भेद से पुण्य के न्यून विशेष की बात अलग रही और ये परम पवित्र, चरित्र सब को सर्वत्र अनायास से प्राप्त हैं और चारों पदार्थों के देने के निमित्त सब काल में समान हैं। यदि अपने अभाग्य से उनमें प्रीति न हो, तो दूसरी बात है। गोपिकाओं की महिमा वेद, ब्रह्मा, शेष, शारदा आदि भी नहीं कर सके। जिनकी चरणरज को ब्रह्मा जी ने अपने शिर पर धारण किया और अपना भाग्य सराहा, तो फिर उनकी महिमा का वर्णन करने वाला कौन है।

हे मंसाराम ! यदि गोपिकाओं को भगवद्भक्तों के यूथ में गिना जाय, तो उसमें प्रथम तो यह शंका होती है कि जिनके चरित्र गाकर भक्तजन भक्त नाम पाकर विख्यात होते हैं उनको भक्त कहा जाय, तो ढिठाई है। दूसरे यह कि वेद और पुराणों में कई प्रकार की भक्ति लिखी है, उनके साधन से भक्त नाम होता है और गोपिकाओं ने उन सब में से कोई साधन नहीं किया कि उनकी भक्तों में गणना की जाय। यदि उनको भक्तों में न लिखा जाय, तो भी शंका को स्थान है। प्रथम यह कि किसी ने बिना भगवद्भक्त भगवत् को नहीं पाया। दूसरे यह कि जो भक्त नहीं, तो इस भक्त माल में उनको क्यों लिखा है, इसलिये उनको भगवत् की परम प्रिया और भगवद्वत् जानना चाहिये और जो महिमा उनकी वर्णन हो, वह महिमा भगवत् की समझनी योग्य है, अरु गोपिकाओं की महिमा अधिक है, क्योंकि जो प्रबल होता है, वह निर्बल को अपनी ओर खैंच लेता है, गोपिकाओं ने भगवत् को गोलोक से अपनी ओर खैंच लिया, इसलिये वे अधिक हैं, सिवाय इसके सारा संसार कहता है कि भगवत् इस संसार के कर्ता हर्ता और स्वामी हैं, परन्तु इससे कहने सुनने से भी किसी को विश्वास नहीं होता कि भगवत् का भजन स्मरण करके भगवत् के रूप अनूप का चिन्तवन किया करें और गोपियों के चरित्र को यह प्रताप है कि यदि थोड़ा सा भी कोई उनका चरित्र सुन लेता है, तो ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि भगवत् का वह स्वरूप उसके हृदय में न आ जाय और भगवत् में विश्वास न हो।

हे मंसाराम ! मेरी इच्छा थी कि गोपिकाओं के कुछ चरित्र यहाँ वर्णन करूं परन्तु उनके चरित्र अपार हैं, उनमें से एक प्रकार के चरित्र के लिखने की भी सामर्थ्य करोड़ों जन्म तक नहीं देखता।

गोपिकाओं का भगवत् में अलौकिक भाव था अर्थात् देखने में न आवे ऐसा था, उनका अलौकिक भाव भगवद्भक्तों को परम आनन्द का देने वाला है और दूसरे लोगों को भगवत् में लगा देने वाला है। अलौकिक भाव का अर्थ यह है कि गोपिकायें भगवत् को एक और सब से अलग पूर्ण ब्रह्म परमात्मा जानती थीं और उन्हीं को मित्र, परम स्नेही और प्राणप्रियतम समझ कर मित्रता, दुलार, प्रेम के नियम की रीत से सब आचरण करती थीं। यद्यपि ये दोनों बातें अन्धकार और प्रकाश के समान परस्पर विरुद्ध हैं, परन्तु वे दोनों गोपिकाओं में बने रहे, इसलिये शास्त्रकारों ने उनके भाव को अलौकिक कहा है। इस भाव के चरित्रों में से एक दो चरित्र दिग्दर्शन के लिये दिखाता हूं।

एक बार व्रजभूषण महाराज रात को किसी गोपिका के घर रहे, जब बड़े सवेरे ही वहाँ से चलने लगे, तो इस डर से कि शब्द सुन कर कोई जाग न जाय, अपने पैरों में से घुंघरू उतारने लगे। गोपिका ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि यदि मेरा उपहास हो, तो भले हो, इसकी कुछ चिन्ता नहीं है। परन्तु आपका यह उपहास न होना चाहिये कि पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण अपने चरण से लगे हुए को दूर कर देते हैं।

एक बार व्रज गोपिका मक्खन बेचने को यमुना पार जा रही थीं। उनको व्रजचन्द महाराज से हंसने, बोलने और देखने की प्रीति अनुक्षण रहती थी, इसलिये जिधर नटनागर महाराज थे, उधर को ही गयीं और परस्पर दर्शन होने के पीछे दधि दान का झगड़ा और रसवाद होने पर यमुनापार जाने की इच्छा प्रकट की, व्रजकिशोर महाराज ने कहा कि यह नाव तो यमुना में है परन्तु इस समय मल्लाह नहीं है, यदि तुम को जाना आवश्यक है, तो मैं तुम को पार उतार दूंगा। सब गोपिकायें उस नाव पर चढ़ गयीं और व्रजकिशोर महाराज मल्लाह बने। संयोगवश वह नाव सड़ी और पुरानी थी, जब बीच धारा में पहुंची, तो उसमें पानी आने लगा। कौतुकी महाराज ने कहा कि सावधान हो जाओ, नाव डूबी, व्रजनागरियों को अपने प्राण का शोक न हुआ, कहने लगीं कि यह गोरस और माखन सब डूब जाओ, तो क्या चिन्ता है और यदि हमारे प्राण भी जाते रहें तब भी चिन्ता और शोक का कुछ प्रयोजन नहीं है परन्तु अत्यन्त शोक इस बात का है कि सब जगत् में यह बात फैल जायगी कि जिस नाव का खेने वाला श्रीकृष्ण भवसागर तारक था, वह नाव डूब गयी!

जब यशोदा महारानी ने ब्रह्मा और शिव आदिक को माया की फांसी से बांधने और छुड़ाने वाले को रस्सी से बांधा, तो सब गोपिकायें लीला देखने को आयीं और कहने लगीं कि हे नन्दनन्दन! बहुत अच्छी बात हुई जो तुमको यशोदा जी ने ऊखल से बांधा, अब तुमको दूसरों को बांधने का दुःख जानने में आवेगा भाव यह है कि अब तुम सब जीवों को मुक्त करने की कृपा करोगे।

जब ऊधाजी भगवत् का सन्देशा लेकर मथुरा से गोपिकाओं के पास आये और ज्ञान वैराग्य की बांसरी बजाने लगे, तब व्रजसुन्दरियोंने ऐसे उत्तर दिये कि निरुत्तर हो गये, संयोग वश एक भ्रमर वहां आगया। उस भ्रमर के मिष से गोपिकायें ऊधो से कहती हैं कि हे भ्रमर! तू इस निर्दयी और कपटी की स्तुति और बड़ाई करता है कि जिसने बिचारे राजा बलि से कपट और धूर्तता करके उसका राज्य ले लिया और उसे पाताल में भेज दिया, फिर रामावतार धारण करके पहिले तो शूपणखा को अपने मुख की शोभा पर आसक्त

कर लिया और उसीको कुरूप कर दिया। नहीं मालूम उस धूर्त और देशील को अन्तर्यामी किस लिये कहते हैं। यदि वस्तुतः अन्तर्यामी है, तो हमारी अन्तर्दशा देख कर क्यों नहीं आता और हमारे ऊपर दया क्यों नहीं करता, इस से अनुमान होता है कि या तो वह अन्तर्यामी नहीं है अथवा निर्दयी और बेशील है।

हे भंसाराम! इस प्रकार के अनन्त चरित्र हैं, जिनसे गोपिकाओं का अलौकिक भाव भले प्रकार प्रत्यक्ष होता है। महाभारत, भागवत्, गर्ग संहिता, विष्णु पुराणों से प्रकट होता है कि गोपिकायें वेद श्रुतियों, ऋषीश्वरों और जनकपुरवासियों की स्त्रियों का अवतार थीं। जिनका ज्ञान, वैराग्य, प्रेम और भाव इत्यादि उनको हुआ सब ठीक और युक्त है। गोपियों का प्रेम इतना था कि सब ऋषीश्वरों और कवियों ने पिछले अगले और अब के प्रेम का अन्त गोपियों पर समाप्त किया है। प्रेम निष्ठा में इनके प्रेम की जो दशा वर्णन की जायगी और उनके दृष्टान्त वर्णन किये जायगें, वह करोड़ से करोड़वाँ भाग गोपिकाओं के प्रेम का है। ग्रन्थ के आरंभ में जिस शृंगार रस का कुछ वर्णन है और कुछ शृंगार रस की भूमिका में है, उस रस के सजाने की ध्वजा अथवा उस रसके देश की सकवर्ती राजा ये व्रज गोपिकायें हैं। उस रस का अन्त गोपिकाओं पर समाप्त हो चुका है। आज कल थोड़ा रस जिस किसी को प्राप्त होता है, वह व्रजनागरियों की कृपा से प्राप्त होता है। जिस किसी को उस रस के स्वाद की चाह हो, वह गोपिकाओं के चरित्र की शरण लेवे। व्रजगोपिका और व्रजचन्द महाराज के जो चरित्र सब शास्त्रों में लिखे हैं वे चरित्र अब तक ज्यों के त्यों करते हैं, जिन को भगवत् ने सूझने वाली आँखें कृपा करके दी हैं, वे चरित्रों को देखते हैं। व्रजचन्द्र महाराज व्रज छोड़ कर कभी कहीं नहीं जाते और भागवत् इत्यादि पुराणों में जो मथुरा, द्वारका का और भगवत् के जाने का वर्णन हुआ है, वह किसी प्रयोजन से है। एक रूप ने तो सब चरित्र मथुरा आदि में किये हैं और दूसरा नित्य स्वरूप पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन नन्दनन्दन महाराज व्रज में रहे हैं और वे चरित्र अब तक ज्यों के त्यों होते हैं, इसका सिद्धान्त वेद, श्रुतियों और पुराणों से उपासकों ने अच्छे प्रकार से निश्चय कर दिया है, उसको विस्तार से लिखने की यहां समवाई नहीं है, एक वृत्तान्त संक्षेप से वर्णन करता हूं।

जब उद्धव जी ने विरह के कारण से गोपिकाओं की अत्यन्त विकलता देखी, तो आप दया से अति विकल और बेचैन हो गये और भगवत् के ऊपर निर्दयता और कृतघ्नता का आरोप करने लगे! यह विचार कर ही रहे थे कि क्या देखते हैं कि नन्दनन्दन महाराज किसी गोपिकाको सहसो कर रहे हैं, किसी का माखन चुराकर खा रहे हैं, नन्द जी के घर में गौ बछड़ों की रक्षा गोदोहन आदि कर रहे हैं, वन से गौ चरा कर ला रहे हैं और गोपिकायें भगवत् के देखने के लिये अपने २ द्वार पर खड़ी हैं, ऐसे ही ऐसे चरित्र जो भगवत् नित्य किया करते थे, देखने में आये उद्धव जी आश्चर्य में आकर चकित होकर बेसुध हो गये। ऐसा देख कर व्रजगोपिकाओं ने समझाया कि हे उद्धव! तुम ज्ञान किसको सिखाते हो और किस प्रयोजन से सिखलाते हो, यहाँ श्रीकृष्ण सदा विराजमान रहते हैं और कभी व्रज से अलग नहीं होते।

कुं–गोपी श्रुतियां वेद की, गोप वेद कतार।
पढ़े सुने उनके चरित, बेड़ा हो भव पार॥

बेड़ा हो भव पार प्रेम भगवत् से करिये।
सब की आशा छोड़ ध्यान हरि का नित धरिये॥
भोला! बलाकर, वृद्धि अद्भुत रस सो पी।
गोप अहा रस गान, बृत्तियां मन की गोपी॥

कथा मीरां बाई की।

गोपिकाओं की प्रीति और भक्ति के अनुसार कलियुग में अशंक और निर्भय प्रीति मीराबाई जी की थी। संसार की लज्जा और कुल की परम्परा त्याग कर इन्होंने गिरधरलाल जी से प्रेम लगाया, और इनका निर्मल यश भगवद्भक्तों ने गाया। इन का जन्म मेरते के राजा के घर हुआ था, और लड़कपन से गिरधरलाल जी के रूप अनूप में इनकी प्रीति हो गयी थी। उस प्रीति के होने का कारण कोई २ भगवद्भक्त ऐसा कहते हैं कि किसी बड़े रईस के घर बरात आयी थी, उस बरात की धूम धाम देखने के निमित्त महल की स्त्रियां कोठे पर चढ़ीं। उस समय मीराबाई जी की माता गिरधरलाल जी के दर्शन करने को, जो महल में विराजते थे, गयी थीं। मीराबाई अभी तीन चार वर्ष की थी, खेलती हुई अपनी माता के पास चली गयीं और अपनी माता से पूछने लगीं कि हमारा दूलह कौन है। माता ने उनको हंस कर गोद में उठा लिया और गिरधर लाल जी को दिखा कर कहा कि तेरा दूलह यह है. मीराबाई जी ने अपनी माता की लज्जा से अपने दूलह से घूँघट कर लिया और उसी घड़ी से उनकी गिरधरलाल जी में ऐसी प्रीति हुई कि उनकी एक पल अपने स्वामी के दर्शन और चिन्तन बिना व्यतीत नहीं होता था।

भक्तमाल के तिलककार ने लिखा है कि गिरधरलाल जी में मीराबाई की प्रीति दृढ़ होजाने के पीछे माता पिता ने चित्तोर के राजा के बेटे के साथ मीराबाई की सगाई कर दी और बड़ी भारी बरात आई। जब राजा के बेटे के साथ मांवरी होने लगी, तो मीराबाई जी अपनी मांवरी गिरधर-लाल जी के साथ कर रहीं थी, राना के बेटे का उनको भान तक न था। जब माता पिता बिदा की तैयारी करने लगे, तो मीराबाई जी गिरधर लाल जी के वियोग को न सह सकीं और रोते २ अत्यन्त व्याकुल होकर वे मुर्छित हो गयीं। मा बाप ने अत्यन्त प्यार से कहा कि सब कुछ तैयार है, जो तुम को अच्छा लगे, ले जाओ। मीराबाई जी अति व्याकुल होकर कहने लगी कि यदि मुझे जिलाना चाहते हो तो गिरधरलाल जी को दे दो। मैं तन मन से सेवा करूंगी। माता पिता को मीराबाई जी बहुत प्यारी थीं और बिछुड़ने का समय था, इस लिये उन्होंने गिरधर लाल जी मीराबाई को सौंप दिये।

बाई जी भगवत् को अपने डोले में विराज-मान करके भगवत् छवि को देखती हुई और अपने प्राण प्रियतम के मिलने से बहुत प्रसन्न और हर्षित राना के घर पहुंचीं। सासने डोला उतारने की रीति भाँति करके पहिले अपने बेटे से दुर्गा का पूजन कराया और फिर बाई जी से पूजन करने को कहा। मीराबाई जी ने उत्तर दिया कि यह तन गिरधरलाल जी को भेंट कर चुकी हूं। उनके सिवाय दूसरे के सामने शीश नहीं झुका सकती, सासने कहा कि दुर्गा के पूजन से सुहाग की बढ़ती होती है, इसलिये दुर्गा पूजन उचित है। मीराबाई जी ने उत्तर दिया कि इस बात में हठ करने का कुछ प्रयोजन नहीं है, जो कुछ मैंने कहा है, वह ही होगा, उसके सिवाय और कुछ नहीं हो सका। यह सुन कर मीराबाई जी की सास अप्रसन्न हुई और जल बल कर अपने पति के पास जाकर कहने लगी कि

यह बहू किसी काम की नहीं है, जब कि पहिले ही दिन उत्तर देकर मुझे लज्जित कर दिया, तो न जाने आगे क्या करेगी ? राना यह बात सुन कर महा क्रोध में भर कर मीराबाई जी के मारने को उद्यत हुआ परन्तु अपनी स्त्री के कहने से रुक गया और मीराबाई जी को अलग मकान में टिका दिया।

मंसाराम–महाराज ! गोपिकाओं ने और रुक्मिणी ने भी तो दुर्गा पूजन किया था, फिर मीराबाई जी ने क्यों नहीं किया।

मस्तराम–भाई गोपिकाओं और रुक्मिणी ने तो श्रीकृष्ण कि मिलने से पहिले दुर्गा पूजन किया था और मीराबाई जी को श्रीकृष्ण महाराज पहिले ही से पति मिल चुके थे, इसलिये दुर्गापूजन का प्रयोजन नहीं था। जब मीराबाई अलग स्थान में रहने लगीं, तो बहुत प्रसन्न हुई और गिरधरलाल जी को विराजमान करके भगवत् के शृंगार और सजावट में और सत्संग में दिन रात मन लगाने लगीं। एक दिन इनकी नणद उदाबाई आकर इस प्रकार समझाने लगी।

उदाबाई–भाभी ! तू बड़े घर की बेटी है, कुछ ज्ञान विवेक सीख, वैरागियों का संग छोड़ दे इस में दोनों कुलों को कलंक लगता है।

मीराबाई–हे बहिन ! सत्संग से कलंक नहीं लगता, करोड़ों जन्मों के कलंक छूट जाते हैं, जिसको सत्संग प्यारा नहीं है, वह ही कलंकी है और हमारा तो सत्संग से ही जीवन है, जिसको दुःख हो, उसको तुम्हारी शिक्षा ग्रहण करना उचित है, हमको नहीं।

उदाबाई ने आकर सब वृत्तान्त अपने माता पिता से कहा कि मीराबाई भगवद्भक्ति में ऐसी दृढ़ है कि किसी का कहना नहीं मानती। राना ने क्रोधित होकर चरणामृत का नाम करके विष का कटोरा मीराबाई जी के पास भेज दिया। मीराबाई जी भगवच्चरणामृत को शीश पर चढ़ा कर अति आनन्द से पान कर गयीं। राना बाट देखता रहा कि अब मीराबाई के मरने के समाचार पहुंचते हैं परन्तु मीराबाई के मुखारविन्द पर शोभा का प्रकाश क्षण २ बढ़ता था, भगवत् के शृंगार और भगवत की शोभा में छकी हुई नये २ प्रकारों से सजावट करती थीं और भगवच्चरित्रों का कीर्तन करती हुई रस और प्रेमामृत में मगन रहती थीं, उस समय उन्होंने एक विष्णुपद भगवत् के सामने कीर्तन किया था, उसका भाव यह है। 'राना जी तैं जहर दियो हम जानी।

जब मीराबाई जी को विष की ज्वाला कुछ न व्यापी, राना ने ड्योढ़ीदार रख दिया कि जिस समय मीराबाई साधुओं से बात चीत करती हो, उसका वृत्तांत पहुंचावें कि मार डाली जावे। मीराबाई जी गिधरलाल जी के साथ हंसी, ठट्ठा, खेल, बात चीत, परकीया अभिमानियों और प्रियवल्लभों की जैसी होती है, वैसी किया करती थीं, एक दिन ड्योढ़ीदार ने समाचार पहुंचाये कि इस समय मीराबाई किसी के साथ हंसी ठट्ठे की बातें कर रहीं हैं। राना तलवार लिये हुए पहुंचा और पुकारा कि किवाड़ खोल। मीराबाई जी ने किवाड़ खोल दिये। राना भीतर गया, वहां कुछ न देख कर बोला कि जिसके साथ हंसी ठट्ठे की बात चीत हो रही थी, वह कहां है। मीराबाई जी ने कहा कि तुम्हारे आगे विराजमान हैं, आंख खोल कर देख लो क्योंकि उससे और तुम से कुछ लज्जा या ओट नहीं है। उस समय मीराबाई और भगवत् चौसर खेल रहे थे जब राना पहुंचा, तो उसी समय भगवान् ने पांसा डालने के लिये हाथ फैलाया था राना भगवत् के हाथ में फांसा देख कर लौट गया।

यद्यपि राना ने अपनी आँखों से यह भगवत् का प्रताप देखा, तो भी उसके मन में कुछ विश्वास न हुआ। जब तक भगवद्भक्तों की कृपा नहीं होती, तब तक भगवत् कदापि कृपा नहीं करते, इसमें सन्देह नहीं है। राना तो मीराबाई के उपाय में लगा हुआ था, भगवत् की कृपा उस पर कैसे हो?

एक दिन एक धूर्त कपटी साधु का वेष बना कर मीराबाई के सामने आया और कहने लगा कि गिरधरलाल जी की आज्ञा है कि मीराबाई को पुरुष के अंग संग का सुख दो, इसलिये आया हूं। मीराबाई ने कहा कि गिरधलाल जी की आज्ञा मेरे शिर ऊपर है, पहिले आप भोजन प्रसाद करें। पश्चात् मीराबाई जी ने भगवद्भक्तों की समाज के मकान के आंगन में पलंग बिछवाया और सज के उस साधुको बुला कर कहा कि पलंग पर पधारिये, लज्जा और भय किसी बात की न कीजिये, क्योंकि गिरधरलाल जी की आज्ञा का पालन करना सर्वथा उचित है। यह धूर्त सुनते ही पीला पड़ गया और उस के हृदय का अन्धकार दूर होकर प्रकाश हो गया। त्राहि त्राहि करके मीराबाई के चरणों में पड़ा मीराबाई ने कृपा करके उसे भगवत् संमुख कर दिया।

अकबर बादशाह मीराबाई जी की सुन्दरता का वृत्तान्त सुन कर तानसेन के साथ दर्शन करने को गये और दर्शन किये, पीछे भक्ति की दशा देख कर अपने भाग्य को धन्य मान कर बहुत प्रसन्न हुए। तानसेन ने एक विष्णुपद भगवत् की भेट किया और पीछे दोनों वहां से लौट कर चले गये।

एक बार मीराबाई वृन्दावन में जीवगोसाँई के दर्शन को गयी। जीव गोसाई जी ने कहला भेजा कि हम स्त्रियों का दर्शन नहीं करते। मीराबाई जी ने कहा कि मैं तो वृन्दावन में सब को सखी रूप जानती थी और पुरुष तो केवल गिरधरलाल जी को ही समझती थी, आज मेरे जानने में आया कि इस ब्रज के और उस ब्रजराज के और भी पट्टी दार है, गोसाई जी इतना सुनते ही नंगे पैरों आये और मीराबाई के दर्शन करके प्रेम में पूर्ण हो गये पीछे मीराबाई जी सब बन और कुञ्जों के दर्शन करके और भगवत् रूप की माधुरी को हृदय में रख कर अपने देश में आगयीं, राना की बुद्धि ज्यों की त्यों बिगड़ी हुई देख कर द्वारका जी में चली गयीं और गिरधरलाल जी की शोभा में छकी हुई भगवत् शृंगार के रस में मग्न रहने लगीं।

जब राना के नगर में भगवद्भक्तों का आना बन्द हुआ और भान्ति २ के उपद्रव होने लगे, तब राणा ने मीराबाई जी की भक्ति का प्रताप जाना और बहुत से ब्राह्मण मीराबाई जी को फेर लाने के निमित्त भेजे। ब्राह्मण द्वारका में गये और राणा की प्रार्थना और विनती सुनाई। जब ब्राह्मणों ने देखा कि उनका देश चलने का मन नहीं है, तो सब धरना देकर बैठे गये कि जब तुम चलोगी, तब ही अन्न जल करेंगे। मीराबाई जी ने कहा कि मेरा निवास इस द्वारका में रण छोड़ जी की कृपा से हुआ है, उनसे बिदा हो आऊं। यह कह कर वहां जाकर गिरधरलाल जी के प्रेम में मग्न होकर एक विष्णुपद भेट किया, अन्त की उसकी तुक यह है। 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिलि बिछुड़न नहि कीजे! भगवत् पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन मीराबाई की परम प्रीति देख कर उनको अलग न कर सके और अपने अंग में मिला लिया। विलम्ब होने पर ब्राह्मण ढूंढते हुए वहां पहुंचे, मीराबाई को कहीं नहीं देखा परन्तु मीराबाई की सारी पीताम्बर की जगह भगवत् के अंग पर देखी। यह देख कर ब्राह्मण लौट आये और पीछे अकबर बादशाह ने

युद्ध में विजय करके चित्तौर को ध्वंस कर दिया।

कु-मीरां गिरधरलाल के, तन मन दीन्हा वार।
प्रेम बढ़ाया रात दिन, छोड़ दिया घरबार॥
छोड़ दिया घर बार, चित्त भगवत् में दीन्हा।
भगवत् हुए प्रसन्न, अंग अपना कर लीन्हा॥
भोला! सोई धीर, वीर सोई रण धीरा।
भगवत् में दे चित्त, अहर्निश जैसे मीरा॥

तपस्वी मुहम्मदअली हकीम तरमोजी

[ले० श्री कृष्णगोपाल जी माथुर]

तपस्वी मुहम्मदअली हकीम महान साधु अत्यन्त क्षमावान् और शांत स्वभावी थे। जीवन में उन्होंने अनेक प्रकार की साधनाएं साधी थीं। तरमोज नामक स्थान में आप रहती थे। रहने के लिये सिर्फ एक झौंपड़ी थी। मक्काशरीफ से लौट कर आपने देखा कि उस झौंपड़ी में एक कुत्ती ने बच्चे दिये हैं। यह देख कर आप चुपचाप एक तरफ उस कोठरी में रहने लगे। यहाँ तक कि किसी तरह की आवाज़ भी इस डर से नहीं करते कि कहीं कुतिया बच्चों को छोड़ कर निकल न जाय! एक फ़कीर का आपसे वैर भाव था, पर वह भी आपकी इस दया को और सद्भाव को देख कर लज्जित हो गया। और आपकी सेवा करने लगा।

किसी ने आपके परिवार से पूछा कि-आपके बुजुर्ग महात्मा मुहम्मदअली हकीम कभी क्रोध भी करते हैं या नहीं?" उत्तर मिला कि "जब हम उनको क्लेश पहुंचाते हैं, तब वे हमारे ऊपर विशेष प्रेम प्रकट करते हैं। कुछ खाते नहीं हैं। रोते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मैंने आपको क्या कष्ट दिया है, जो आप मुझे पीड़ा पहुंचाने के लिये इन लोगों को प्रेरणा करते हैं? हे नाथ! मैं विनती करता हूं कि ये लोग मेरे ऊपर प्रसन्न रहें, ऐसी कृपा करो।" उनके ऐसे वचन सुन कर हमको बड़ा पश्चात्ताप होता है और हमारे दिलमें ऐसा भाव उपजता है कि अब कभी इनके मन को नहीं दुखाना चाहिये।

एक बार शुक्रवार के रोज आप स्वच्छ वस्त्र पहन कर मसजिद में जा रहे थे, इतने ही में अटारी के ऊपर से एक दासी ने बालक का मलमूत्र उनके माथे पर फेंक दिया। इससे महर्षिका सारा शरीर और वस्त्रादि बिगड़ गये। परन्तु आपको ज़रा भी क्रोध नहीं आया। आप स्थिरभाव से खड़े रहे, एक शब्द भी जबान से नहीं निकाला और क्रोध का कोई भी चिन्ह उनके मुख पर प्रकट नहीं हुआ।

तपस्वी मुहम्मदअली कहते हैं कि एक बार मैं व्याधि से बहुत पीड़ा पाने लगा। तब मैं अपने मन में अफसोस करके बोला कि" अरे! मेरा आरोग्य कहाँ गया? नीरोगी अवस्था में मैं कितने सत्कार्य कर सकता था? अब तो नहीं कर सकूंगा हाय, मेरी सारी शक्ति नष्ट हो गई। इतने ही में मैंने आकाशवाणी सुनी कि-"मुहम्मदअली! तू ऐसी बातें क्यों करता है? जो काम तू करता है, वे प्रभु के कार्यों के मुकाबले में कुछ भी नहीं है। तेरे कार्य भ्रान्ति और उदासी से रहित नहीं हैं, पर ईश्वरी कार्य भ्रान्ति रहित और मंगलमय हैं।" यह वाणी सुन कर मुझे बहुत ही ग्लानि हुई। मैंने प्रतिज्ञा की अब ऐसा विचार कभी नहीं करूंगा।

महात्मा मुहम्मदअली ने चार बातों का जवाब बहुत ही उपदेश पूर्ण दिया है। वे चार बातें ये हैं:-

(१) उन्नत कौन है? जिसको आप नहीं दबा सके।

(२) मुक्त कौन है? जिसको सांसारिक लोग अपना दास न बना सके।

(३) मर्द कौन है? शैतान जिसको क़ैद न कर सके।

(४) ज्ञानी कौन है? जो ईश्वर-प्राप्ति के लिये सर्व भाव से एक निष्ठ बन सके।

आपने खुदा की याद में ही अपना सारा जीवन बिताया और भक्ति रस पूर्ण उपदेशों से कई मनुष्यों का कल्याण किया।*

आह्वान

[ले० श्रीमती ब्रजकुमारी जी 'प्रभाकर']

गज और ग्राह के सदृश तुम्हें मैं ना दौड़ाऊंगा।
गउओं के संग बन २ में तुम्हें मैं ना फिराऊंगा॥
भारत में सारथी काम तुम से ना कराऊंगा।
वसुदा की ताड़ना से नाथ! तुमको ना सताऊंगा॥
रण में रथ चक्र को देकर तुम्हें मैं ना भगाऊंगा।
तनक सी छाछ के ऊपर तुम्हें मैं ना नचाऊंगा॥
उलूखल के बन्धन से तुम्हें मैं ना बन्धाऊंगा।
भयंकर दैत्यों का हन्ता तुम्हें मैं ना बनाऊंगा॥
आओ मोहन! चले आओ! चुपके २ चले आओ।
हृदय मन्दिर 'ब्रज' मेरे आकर के बीचे घुस जाओ॥

---

* गुजराती से।

योग-साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

सदैव पवित्र विचार रक्खो। चित्त को ध्यान द्वारा अधिक पवित्र बनाओ।

४०१. जब तक तुम्हारे चित्त में एक भी अपवित्र या स्वार्थ पूर्ण विचार है तुम परमात्मा के दर्शन नहीं कर सकते।

४०२. जब तक तुम्हारे भाव राजसी हैं तुम अपने शत्रुओं के प्रति घृणा और बदला लेने के भाव रखते हो परन्तु जब तुम निष्काम कर्म या उपासना द्वारा अध्यात्म में उन्नति कर जाओगे तो घृणा के विचार धीरे २ कम हो जावेंगे और तुम उदासीन दशा में हो जाओगे आगे चल कर जब तुम्हारा मन सत्वगुण से पूर्ण हो जावेगा तो उदासीनता भी चली जावेगी और तुम्हारा उनसे बड़ा प्रेम हो जावेगा तुम समदृष्टि हो जाओगे।

४०३. अहंकार में अन्धे मूर्ख धनाढ्य पुरुषो। तुम क्यों पत्थर के बड़े २ विशाल मन्दिर बनाते हो? अपने हृदय में सुनहरी मन्दिर क्यों नहीं बनाते? भगवान कृष्ण को सोने के मन्दिर की आवश्यकता नहीं है। उनको तो तुम्हारी सच्ची भक्ति की जरूरत है।

४०४. रजोगुण से चित्त में विक्षेप उत्पन्न हो जाता है। जब रजोगुण सत्व गुण या तमोगुण से मिश्रित हो जाता है तो कर्म्म होने लगता है। जब सत्वगुण कर्म्म का आधार होता है तो मनुष्य पवित्र काम करता है और शुद्ध वृत्तियें उत्पन्न होती हैं। जब कर्म्म का आधार तमोगुण होता है तो धूर्तता, नीचता, मक्कारी, और धोखा उत्पन्न

होता है। लंका के रावण के कर्मों का आधार तमोगुण था। अयोध्या के श्रीराम के कर्मों का आधार सत्वगुण था लड़ाई दोनों की तरफ से समान थी।

४०५. तुमको नित्य प्रति नियम पूर्वक ध्यान करना चाहिए, जप करना चाहिए और गीता उपनिषद्, विवेक चूड़ामणि आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए। यह विचार मत करो कि जब मैं उत्तर काशी हिमालय जाऊंगा तब एकन्त में एक काम करूंगा। ऐसा विचार गलत है, यह मूर्खता है। तुमको नित्य प्रति ध्यान, स्वाध्याय और निष्काम कर्म्म करने का स्वभाव बनाना चाहिए। वह कल कभी नहीं आवेगा। जब सूर्य चमक रहा है उसी समय अपनी घास को सुखालो। अनाज को निकाल लो जब कि वायु चलता है। शरद ऋतु में शहद का इकट्ठा करना कठिन है।

४०६. एकाग्र चित्त करो, ध्यान लगाओ कुछ घण्टे एकान्त में व्यतीत करो। सभ्य नम्र और सुशील बनो। कभी अहंकार मत करो। उदार बनो और सन्तोष रक्खो। जब तुम काम करो या वार्तालाप करो तो इन गुणों को प्रकाशित करो। प्रत्येक विचार व वृत्ति पर अधिकार रक्खो। यह संसार क्रीड़ास्थल नहीं है। तुमने सन्यास ग्रहण करके गेरवां कपड़े पहने हैं यह कपड़े बड़ी जुम्मेवारी के हैं। स्त्रियों के संग से बचो। उनके साथ कभी हंसी ठठा न करो। उनसे ऐसा सम्बन्ध रखने से काम चेष्टा उत्पन्न हो सकती है। मन की चाल बड़ी सूक्ष्म है इससे सावधान रहो।

४०७. भिक्षा वृत्ति से कोई पदार्थ मत मांगो। प्रथम अपनी इन्द्रियों को वश में करो और फिर समस्त पदार्थों को अपना समझते हुये जिस चीज़ की इच्छा है मांगो वह अवश्य मिलेगी। प्रकृति पर विजय प्राप्त करो। समस्त संसार ही तुम्हारा घर है, सम्पूर्ण रचना ही तुम्हारा शरीर है और समस्त जीव तुम्हारी आत्मा हैं॥

४०८. काम करने के लिए पद्धति और नियम की बड़ी आवश्यकता है। नियम से काम करने पर ही कुछ फल प्राप्त हो सकता है। अनियमित काम करने से कुछ लाभ नहीं हो सकता॥

४०९. अपनी अन्तरात्मा में पूर्ण विश्वास रक्खो। अपनी वृत्तियों का निरीक्षण करो। उनको शुद्ध करो। स्वार्थ के भावों को नष्ट करो। सब प्रकार की नीच वृत्तियों का दमन करो। अपने प्रत्येक कार्य में पवित्र बनो। मामूली बातों के लिए झगड़ा मत करो। चुगली, निन्दा दोनों को छोड़दो दोष निकालने के स्वभाव को मिटादो। झगड़े और वैमनस्य के यही मुख्य कारण हैं। अपनी आसुरी वृत्तियों को पूर्ण रूप से बदल डालो।

४१०. एक सच्चा सन्यासी केवल कोपीन रखते हुए भी बादशाहों का बादशाह है। (कौपीन वन्ता खलु भाग्यवन्ता,) कौपीन धारी सन्यासी निश्चय तौर से भाग्य शाली है।

४११. मैं शहन शाह अर्थात् बादशाहों का बादशाह बनगया हूं। मुझे (Divine majesty) कहते हैं, मैं उन तुच्छ विचार वाले नाम मात्र के धनी लोगों पर हंसता हूं जो संसारी कीड़े हैं और माया की सड़न में बिल बिला रहे हैं। मैं इन अत्यन्त दुःखी पापियों के लिए प्रार्थना करता हूं। मैंने बहुत आदमियों को बादशाह बना दिया है। यदि तुम में वैराग और विवेक हो और तुम सचाई से मेरे कहने के अनुसार काम करो तो मैं तुमको भी बादशाहों का बादशाह बना सकता हूं। जिज्ञासुओं के लिए मेरे पास एक अध्यात्मिक गोली है। इस गोली पर शक्कर चढ़ी हुई है और

बड़ी उत्तम है खाते ही हज़म होकर शरीर का अंग बन जाती है।

४१२. यद्यपि तुम्हारे पुत्र में सैकड़ों दोष हैं परन्तु तुम उनकी तरफ दृष्टि नहीं करते यद्यपि दोष वहाँ मौजूद हैं फिर भी तुम उनको देखते नहीं। इसी प्रकार यद्यपि तुम को संसार दिखाई देता है परन्तु तुम उसको भूल जाओ और सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म देखो॥

४१३. एक ज्ञानी या विवेकी को नवीन दृष्टि और नवीन आंख मिल जाती है। उसको सर्वत्र भलाई ही भलाई दृष्टि गोचर होती है, जिस तरह हरी ऐनक लगाने वाले को सब कुछ हरा ही हरा नज़र आता है। यह कितनी सुन्दर, आनन्द दायक और आश्चर्य जनक अवस्था है। ऐसे पुरुष धन्य हैं मेरा उनको नमस्कार है॥

४१४. किसी वकील या पुलिस अफसर के अशुद्ध चित्त को ठीक करना बड़ा कठिन काम है क्योंकि उनका चित्त अनन्त बुरे संस्कारों, संकल्पों और वासनाओं से भरा हुआ होता है। बहुत काल तक उनके चित्त में चालाकी, धोखा, झूठ और लोभ की मात्रा बनी रहती है।

४१५. निर्गुण ब्रह्म शुद्ध सत् चित्त आनन्द ज्ञान है और ईश्वर सत् चित्त आनन्द ज्ञान है, निर्गुण ब्रह्म को अव्यक्त कहते हैं और ईश्वर को अव्यक्त भाव कहते हैं।

४१६. जिस प्रकार एक शराब पीये हुये आदमी को अपने लटकते हुए कपड़े का ज्ञान नहीं होता इसी प्रकार एक ज्ञानी को जिसने ब्रह्म के आनन्द की शराब पी रक्खी है अपने शरीर का ज्ञान नहीं होता॥

४१७. जिस प्रकार तुम अनुभव करते हो कि एक टूटा हुआ जूता ढीले तौर से तुम्हारे पैर में पहना हुआ है और तुम उस जूते से बिलकुल पृथक् हो उसी तरह एक ज्ञानी अनुभव करता है कि जीर्ण स्थूल शरीर उससे लगा हुआ है और वह वास्तव में शुद्ध ब्रह्म है और इस शरीर से बिलकुल पृथक् है और इसका उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है॥

४१८. यद्यपि एक ज्ञानी अपनी समानता समस्त संसार के जीवों के शरीरों से करता है परन्तु वह यह भी जानता है कि उसका इस खास शरीर से विशेष सम्बन्ध है जिसको उसने धारण कर रक्खा है और वह यह भी समझता है कि इसका निर्माण मेरे प्रारब्ध (कर्म्म) से हुआ है।

४१९. यद्यपि उसके पूर्व स्वभाव का नवीन संस्कार हो गया है तो भी उसके प्राचीन स्मृति चिन्ह, पुराने संस्कार और स्वभाव थोड़ी बहुत मात्रा में अवश्य शेष रह जाते हैं। श्री राम कृष्ण परमहंस ने ज्ञान भी प्राप्त कर लिया परन्तु उनकी जलेबी खाने की रुचि फिर भी बनी रही। इस कारण से गीता में कहा है। सदृशं चेष्टते स्वस्या प्रकृते र्ज्ञानवानपि (अ० ३ श्लो ३३) ज्ञानी भी अपने स्वभाव के अनुसार ही बर्तता है।

४२०. एक अखण्ड नैष्ठिक ब्रह्मचारी गृहस्थी की अपेक्षा बहुत जल्दी साक्षात्कार कर सकता है। एक मनुष्य खानेवाला शेर जिसने एक बार मनुष्य के रुधिर को चखलिया है उस रुधिर के स्वाद को पूर्ण तया कभी नहीं छोड़ सकता। इसी प्रकार एक गृहस्थी के लिये काम वासना का चित्त से सर्वथा त्याग करना बहुत कठिन है। एक बर्तन जिसमें कि लहसुन रक्खा हुवा है या हींग भरा हुवा है यद्यपि उसको सौ बार साबुन, मिट्टी, राख या जल से साफ कर लिया जावे तो भी उसमें से लहसुन और हींग की बदबू पूर्ण तया कभी नहीं

जा सकती। उनको चाहिये कि परमात्मा की वेदी पर शुद्ध चित्त के साथ अपना बलिदान करो श्री शंकराचार्य, श्री ज्ञानदेव, स्वामी आनन्द, स्वामि विवेकानन्द सब के सब ब्रह्मचारी थे।

४२१. जो आज्ञाचक्र अथवा त्रिपुटि में ध्यान करेंगे उनको अमृत पीने को मिलेगा साधारण तया अमृत जो साहस चक्र से नीचे की ओर बहता है। नीचे की अग्नि से खाया जाता है जो मनुष्य शीर्षासन लगाते हैं उनका अमृत अग्नि की ओर नहीं आता यह शीर्षासन का बहुत बड़ा लाभ है।

४२२. वर्तमान माया के युग में भी लोगों के चित्त में अध्यात्मिक जागृति बहुत है बहुत से उच्चकुल के शिक्षित पुरुषों ने सन्यास धारण कर लिया है। एक जिज्ञासु के निम्न लिखित प्रेम पत्र को पढ़ो। ये बिना तारीख और बिना नाम का है।

४२३. मेरी एक विनीत प्रार्थना है. सिन्ध देश का २४ वर्ष की आयु का एक प्रेमी युवक प्राचीन ऋषियों के ज्ञानको सीखने की इच्छा रखता है। उसका चित्त आपकी ओर बहुत आकर्षित हो गया है बहुत सम्भावना है कि थोड़े ही समय में वह आपके चरण कमलों में आ जावे कृपा करके प्रेम की धाराएं उसकी तरफ भेजिये। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा आपको आनन्द प्रदान करे।

आपका प्रेमी बालक–

४२४. एक सांसारिक पुरुष लेने की इच्छा रखता है और आज्ञा चलाने में प्रसन्न रहता है। यह सदैव इस बात में प्रसन्न रहता है कि दूसरों से कुछ प्राप्त करे और उनपर शासन करे। यह राजसी गुण है। एक सन्यासी सदैव देता है और सेवा करता है उसको दूसरों की सेवा करने में और उनको देने में आनन्द आता है यह सात्विक गुण है।

४२५. ध्यान करो कि हिमालय और गंगा का कितना चित्ताकर्षक और पवित्र दृश्य है जिससे चित्त पर बड़ी शान्ति दायक और उत्तम प्रभाव पड़ता है। डा० आर० मुझे लिखता है आपका सुन्दर आश्रम पवित्र गंगा के किनारे पर उच्च और आनन्द दायक हिमालय के बीच में ऐसा प्रभाव डालता है कि उसने मेरे चित्त पर सदैव के लिये चिन्ह अंकित कर दिया है। इसका सन्देशा सादा जीवन का है प्राकृतिक दृश्य का है समानता, आत्म संयम और त्याग का है आपके शब्द मेरे कानों में उस समय तक गूँजते रहें जब तक कि मैं उनको समझ कर व्यवहार में लाने के योग्य बनूं। मेरे पर दया करो और शान्ति की प्रबल धारायें बड़े वेग से मेरी ओर भेजो।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गंगा महल पटनिरोला बनारस।

४२६. केवल जन्म से ही कोई ब्राह्मण नहीं होता है वह जिसमें सत्व गुण है और जो सात्विक कर्म करता है वह ब्राह्मण है। यदि कोई जन्म से ब्राह्मण है और उसमें सात्विक गुण हैं और वह सात्विक कर्म करता है तो निःसन्देह वह अधिक पूजनीय है।

४२७. मेरा चित्त आनन्द से भर जाता है। जब मैं ऐसे पुरुषों से मिलता हूं कि जिनके चित्त में आध्यात्मिक संस्कार हैं और जो आत्म साक्षात्कार के लिये प्रयत्न करते हैं। इस कठिन समय में भी जब कि सब लोग काम और कञ्चन के पीछे पागले हो रहे हैं कुछ सच्चे जिज्ञासु युवक मिलते हैं जिनको केवल परमात्मा की चाह है। निःसन्देह वह उच्च आत्माएं हैं। उनके लिये मेरा नमस्कार है।

४२८. ऐसा कभी मत कहो कि मैं अगले जन्म में साक्षात्कार करूंगा। तुम्हें पीटने के लिये मुझे एक डण्डा लेना पड़ेगा और मैं बहुत नाराज

हो जाऊंगा। तुम इसी जन्म में साक्षात्कार कर सकते हो और इसी क्षण कर सकते हो यदि केवल तुम्हारी इच्छा परमात्मा के लिये है और तुम सचाई से कठिन साधन करने के लिये तैयार हो।

४२९. आध्यात्मिक पथ कांटेदार ऊंचा नीचा और पहाड़ की चोटी की भान्ति है। यह ऐसा सुन्दर नहीं जैसा तुम खयाल करते हो। यह बहुत ज्यादा कठिन है। एकाग्र चित्त करना संसार में सब से कठिन काम है। परन्तु मोक्ष के लिये करना ही चाहिये। जीवन का और कुछ उद्देश्य ही नहीं है। यदि एकबार तुमने दृढ़ निश्चय करके रास्ते को पसन्द कर लिया है तो प्रत्येक काम आसान हो जावेगा। परमात्मा की तुम पर दया होगी साधारण तया लोग तप त्याग और वैराग से भयभीत रहते हैं।

४३०. यह एक पत्र सच्चे और लग्न वाले जिज्ञासु का है। जोकि लंका से आया है। इसकी एक २ पंक्ति से वैराग टपकता है। इस कठिन समय में भी ऐसे पुरुष विद्यमान हैं जो केवल परमात्मा को ही चाहते हैं। ऐसी आत्मायें धन्य हैं। निःसन्देह तुम्हारे लिये आश्चर्य की चिट्ठी है।

पूज्य स्वामि जी!

४३१. मैं एक सीलोन और सिंहालीन का रहने वाला २० वर्ष की आयु का हूं और योगी होने की बहुत बड़ी इच्छा रखता हूं यह केवल मेरी इच्छा ही नहीं है जिसने मेरी लग्न इधर लगाई है वरन मैंने इस संसार के दुःखों का अनुभव भी कर लिया है। संसार दुःखों के सिवाय कुछ नहीं है। संसार में आनन्द कुछ भी नहीं है। गत चार वर्ष से मैं अनन्त आनन्द के मार्ग की खोज में था परन्तु मुझे नहीं प्राप्त हुवा। कुछ दिन हुवे मेरे एक मित्र ने योग साधन की तरफ ध्यान दिलाया। कुछ दिन पश्चात् योग-साधन के सम्बन्ध में मैंने कुछ लेख और पुस्तकें पढ़ी उस समय से मेरे चित्त में एक इच्छा एक पिपासा मुझ को बेचैन कर रही है कि मैं अनन्त आनन्द को प्राप्त करूं। मैं आपसे विनीत भाव से प्रार्थना करता हूं कि योग-साधन पर विस्तार पूर्वक मुझे लिखें। मैंने इस दुःखमय संसार को पूर्ण तया छोड़ दिया है कृपा करके मुझे आज्ञा दीजिये योग-साधन करने के लिये आपके चरणों का दास बनूं।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं, प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

४३२. तू उनका सोच करता है कि जिनका सोच नहीं करना चाहिये फिर ज्ञानियों की सी बातें करता है। बुद्धिमान न जीतों की चिन्ता करते हैं और न मरे हुवों की। भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं यह बहुत मुख्य श्लोक है गीता का सिद्धान्त इसी श्लोक से आरम्भ होता है। यह वेदान्त ज्ञान से भरा हुवा है यह श्लोक इस संसार तथा इस शरीर की झूंठी मायावी प्रकृति को प्रगट करता है और आत्मा के सच्चे भाव को बताता है। जब मैं किसी कठिनाई में होता हूं तो इस श्लोक को बार २ पढ़ता हूं और इसके पढ़ने से मेरे चित्त में नवीन शक्ति और स्फुर्ति आजाती है। पण्डित वह है जिसको आत्मा का ज्ञान हो वही ऋषि है वही ज्ञानी है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं। अर्जुन मूर्खमत बन भीष्म और द्रोण बड़े सदाचारी और महान पुरुष हैं वास्तव में यह ब्रह्म के सदृश है और अजर अमर हैं तू उनका शोक क्यों करता है तू ज्ञानी के सदृश बात करता है परन्तु वास्तव में मूर्ख है।

४३३. मोह को पूर्णतया तजदे यह तेरे चित्तमें छिपा हुवा है तुझको सदैव अपने चित्त का निरी-

क्षण करना चाहिये। प्रातः और सायं अपनी परीक्षा करना परमावश्यक है। परमात्मा को सर्वत्र अनुभव करना चाहिये।

४३४. तुमको चाहिए कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में से कम से कम कुछ वर्ष शान्ति, आनन्द और एकाग्र चित्तता में व्यतीत करो। अन्तिम स्वाँस तक माया के जाल में फंसे रहना बड़ी मूर्खता है। इस साँसारिक जीवन को समाप्त करो। मेरे प्यारे मित्रो! वास्तव में तुम दुःखी इस पार्थिव जीवन से नहीं बने हो। तुमने स्वयं ही यह दुःख उत्पन्न कर लिए हैं। जितनी शीघ्रता से नौकरी को छोड़ सको छोड़ दो संसार से निकल जाओ और वानप्रस्थी बन जाओ। जब तक नाक है तब तक इसमें से कुछ न कुछ मल निकलता ही रहेगा। एक घण्टा परमात्मा के ध्यान में लगा कर १५ घंटे सांसारी ग्रन्थों में खर्च करने से ध्यान का फल प्राप्त नहीं हो सकता। तुमको ब्रह्म ज्ञान में गोता लगाना चाहिए। जीवन थोड़ा है और समय बीता जारहा है। उठो, जागो और परा वैराग्य को प्राप्त करो। अपने जप और ध्यान का समय बढ़ाओ।

४३५. मोह का नाश कर डालो। यह बन्धन का कारण है। मोह के स्थान में पवित्र प्रेम करो क्योंकि प्रत्येक मनुष्य तुम्हारा अपना आपा है। पवित्र प्रेम से वेदान्तिक भावों का उदय होगा। तुम्हारी आत्मा का विकाश होगा। तुम संसार के साथ अपनी एकता अनुभव करने लगोगे। द्वैत जाता रहेगा, एकता शेष रह जावेगी।

४३६. अय मेरे परमात्मा! मैं उस द्वैत रहित बिना कोध से कब रह सकूंगा? वह मेरी अवस्था कब होगी जब मैं किसी से भी मोह नहीं करता हुआ संशय और शोक से रहित हो जाऊंगा। दया करके मुझे वह अवस्था प्रदान करो, यह मेरी हार्दिक प्रार्थना है। वेदान्त में भी यह सिद्धान्त है कि बहुत से ईश्वर हैं परन्तु यह बात बहुमत से मान्य नहीं है॥

४३७. वेदान्त नेति का प्रचार करके आरम्भ में निषेधात्मक सिद्धान्त को लेता है परन्तु यह माया का निषेध करने के लिए किया जाता है। पश्चात् यह बिलकुल विधायक सिद्धान्त को लेता है वेदान्त का वचन है सर्वम् खल्विदं ब्रह्म। निश्चय करके सब कुछ ब्रह्म है। वेदान्त आश्चर्य रूप से आशा वादी है। वेदान्त निराशावाद नहीं है। वेदान्त कहता है कि इस तुच्छ झूठे विषयानन्द को छोड़ कर आत्मा के अनन्त शुद्ध आनन्द का उपभोग करो।

आत्मानु भूति

[ले० श्री महात्मा राम]

'अयमात्मा ब्रह्म'। यह अपना आत्मा ही ब्रह्म है। वह ब्रह्म सर्वात्म रूप से स्थित है यह अर्थ ही सर्व उपनिषदों का सार भूत है। और जो यह संसार लोगों के अनुभव में आ रहा है तथा व्यवहार का साधक है यह सब कुछ असद्रूप है जैसे स्वप्न काल के अनुभूत पदार्थ भी उत्तर क्षण में नष्ट हो जाते हैं। जागृत में स्वप्न मिथ्या होता है और स्वप्न में जागृत मिथ्या है। सुषुप्ति में स्वप्न जागृत दोनों का ही अभाव हो जाता है। और स्वप्न तथा जागृत में सुषुप्ति का अभाव हो जाता है। इस प्रकार ये तीनों ही मिथ्या हैं क्योंकि तीन गुणों द्वारा ही इन तीनों अवस्थाओं की रचना होती है और इन तीनों का द्रष्टा आत्मा तीनों गुणों से रहित है नित्य है तथा एक है चैतन्य

स्वरूप है। जैसे मृत्तिका में घटपने की भ्रान्ति है शुक्ति में चान्दी की भ्रान्ति है और मरु भूमि में जल की भ्रान्ति होती है। तैसे ही ब्रह्म में जीवत्व की भ्रान्ति है स्वभाविक नहीं है। जैसे मृत्तिका में घट वास्तव में नहीं है। परन्तु उसी मृत्तिका के घटादि अनेक नाम हैं तथा सुवर्ण में कुण्डलादि अनेक नाम हैं और शुक्ति चादी नाम से कही जाती है। इसी प्रकार पर ब्रह्म में जीव शब्द का प्रयोग होता है। जैसे आकाश में नीलता और स्थाणु में पुरुष पना दीखता है तैसे ही चिदात्मा में विश्व दीखता है। जैसे शून्य में वेताल और गधर्वनगर दीखता है। आकाश में दो चन्द्रमा भ्रम से दीखते हैं तैसे ही सत्य ब्रह्म में जगत् दीखता है। जैसे जल में तरंगे तथा तांबे में पात्र रूपता बन जाती है। तैसे ही ब्रह्माण्ड रूप से आत्मा प्रतीत होता है। जैसे घट नाम से पृथिवी और पट नाम से तन्तु पुकारे जाते हैं। तैसे ही जगत् नाम से चिदात्मा भान होता है। घट के यथार्थ स्वरूप को जानने पर घट का बाध होकर मृत्तिका ही शेष रहती है। और पट के यथार्थ रूप को अर्थात् पट में से तन्तुओं को अलग निकालने पर केवल तन्तु ही शेष रहते हैं पट का सर्वथा अभाव हो जाता है इसी प्रकार जगत् का विचार करके अस्ति, भाति, प्रिय तीनों जो ब्रह्म के स्वरूप भूत हैं अलग करने पर केवल नाम रूप मात्र जगत् शेष रह जाता है नाम रूप दोनों कल्पनामात्र है। नाम रूप का आधार और कारण एक सत् ब्रह्म है इसलिये नाम रूप भी ब्रह्म से अलग नहीं हैं। जो कुछ व्यवहार किया जाता है सब ब्रह्म में ही किया जारहा है परन्तु अज्ञान से यह नहीं जानते हैं कि हम ब्रह्म की ही सत्ता से व्यवहार करते हैं। जैसे यह नहीं जानते हैं कि घटादिकों में मृत्तिका ही है। वास्तव में तो कार्य नित्य ही कारण रूप होता है जैसे घट सदा मृत्तिका रूप ही है। तैसे श्रुति तथा युक्तियों से यह प्रपंच भी ब्रह्म रूप ही है। जैसे घट के गृहण करने पर मृत्तिका बलात्कार से गृहण हो जाती है, तैसे प्रपंच के विचार करने पर सब कुछ ब्रह्म रूप ही सिद्ध होता है। आत्मा सदा शुद्ध होता हुआ भी अशुद्ध सा प्रतीत होता है। जैसे रज्जु दो प्रकार का प्रतीत होता है जिसको रज्जु का यथार्थ ज्ञान है उसको तो रज्जु ही दीखती है और जिसको रज्जु का यथार्थ ज्ञान नहीं है उसको सर्प रूप से दीखती है। तैसे ज्ञानवान को जगत् ब्रह्म रूप ही दीखता है। और अज्ञानी को जगत् नाना रूप दीखता है। जैसे घट मृत्तिका रूप ही है तैसे यह देह भी चैतन्य मात्र ही है फिर आत्मानात्मा का विवेक करना व्यर्थ ही है। जैसे रज्जु ही सर्प रूप है तथा शुक्ति ही चांदी रूप है तैसे विवेकी पुरुषों को आत्मा ही देह रूप से निर्णय किया हुआ है। जैसे घट रूप से पृथ्वी है तथा पट रूप से तन्तु है तैसे देह रूप से आत्मा है। जैसे सुवर्ण कुण्डल रूप है तथा जल तरंग रूप है तैसे आत्मा देह रूप है।

आत्मा के अज्ञान से देह में आत्मत्व अध्यास हो जाता है वह आत्मा के ज्ञान होने पर निवृत्त हो जाता है। सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत् को आत्म रूप से जान लेने पर जो भान पदार्थ थे वह सर्व अभाव रूप हो जाते हैं फिर देह में आत्माध्यास नहीं रह सक्ता किन्तु केवल शुद्ध चैन्य आनन्द स्वरूप आत्माको निरंतर जानता हुआ विद्वान् काल को व्यतीत करता है। वह विद्वान् पुरुष सर्व प्रकार के प्रारब्ध कर्मों के फल को भोगता हुआ किसी प्रकार उद्वेग मान क्षोभ को नहीं प्राप्त होता है। कई विद्वानों का यह कथन है कि ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् भी प्रारब्ध कर्म से छुटकारा

नहीं होता अर्थात् ज्ञानवान् को भी प्रारब्ध कर्म का फल भोगना पड़ता है। सो यह उनका कथन युक्त नहीं है क्योंकि तत्व ज्ञान के उत्पन्न हुए प्रारब्ध का शेष रहना किसी प्रकार भी नहीं बनता है कारण जब यह देहादिक ही असत्य हैं तब देह को भोग देने वाला कर्म किस प्रकार सत्य हो सक्ता है। जन्मान्तर में किये हुए कर्मों का नाम प्रारब्ध है जब जन्मान्तर का ही अभाव हो गया तब प्रारब्ध कहां रहा।

जैसे स्वप्न का देह अध्यस्त है तैसे ही यह देह भी अध्यस्त है। जो वस्तु अध्यस्त होती है। वह अधिष्ठान के ज्ञान से नष्ट हो जाती है। जैसे रज्जु रूप अधिष्ठान के ज्ञान से सर्प रूप अध्यस्त वस्तु का बाध हो जाता है। बाध हुई वस्तु का फिर जन्म नहीं होता आत्मा अधिष्ठान है देह अध्यस्त है। आत्मा रूप अधिष्ठान के ज्ञान होने पर देह जो अध्यस्त है उसका बाध यानी अभाव हो जाता है। जब देह का ही अभाव हो गया तब देह को भोग देने वाले प्रारब्ध कर्मों का बाध अर्थ से ही सिद्ध है।

जैसे घट उपादान का कारण मृतिका है तैसे जगत का उपादान कारण अज्ञान है। मृतिका के नष्ट होने पर घट का आप ही नाश हो जाता है। तैसे जगत् के कारण रूप अज्ञान के नाश होने से कार्य रूप जगत् का भी नाश हो जाता है। जैसे रज्जु के स्वरूप को छोड़ कर भ्रम से सर्प को देखता है। तैसे मूढ़ बुद्धि वाला पुरुष सत्चित् आनन्द स्वरूप आत्मा को नहीं जान कर जगत् को देखता है। और रज्जु के यथार्थ रूप को जान लेने पर जैसे सर्प नहीं ठहरता है तैसे आत्मा के जानने पर प्रपंच नहीं रहता है। यह देह भी प्रपंच रूप है प्रपंच के नष्ट होने पर देह भी नष्ट हो जाता है।

प्रारब्ध कर्म कथन किये हैं वह तो अज्ञानियों के बोधार्थ कहे हैं। अज्ञानियों की दृष्टि में ज्ञान वानों का देह भी व्यवहार में प्रवृत हुआ दीखता है। उनकी तसल्ली के लिये श्रुति ने प्रारब्ध कर्म का कथन किया है कोई प्रारब्ध के सत्यत्व को कथन करने का श्रुति का तात्पर्य नहीं है। क्योंकि सिद्धान्त रूप से श्रुति ने मुण्डकोपनिषत् में यह कथन किया है की उस परावर ब्रह्म के दर्शन करने वाले के सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं। यहाँ तत्काल ही अर्थ प्रतीत होता है। यथाश्रुतिः।

'भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥'

पार तथा वार से रहित अनन्त परिपूर्ण रूप जो परब्रह्म परमेश्वर है। उसके साक्षात्कार होते ही इस पुरुष के हृदय में जो संदिग्ध बातें थीं तथा आत्मा अनात्मा की ग्रन्थी पड़ी थी सब खुल जाती हैं। और सर्व प्रकार के संशय जो थे नष्ट हो जाते हैं। यहां श्रुति में 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, यह कर्माणि शब्द बहुत्व का बाचक है अर्थात् ज्ञानवान् पुरुष के सर्व कर्मों का नाश हो जाता है। उसके प्रारब्ध कर्म और आगामी तथा संचित सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं।

आत्मा के साथ अहंकार आदिक उपाधि के सम्बन्ध से रहित केवल ब्रह्मात्म रूप से वर्तमान जो मुनि है उसके लिये प्रारब्ध कर्म की कथा अयुक्त है। जैसे जागृत को प्राप्त हुए पुरुष के लिये स्वप्न में देखे हुए पदार्थों का सम्बन्ध नहीं होता।

ज्ञानवान् पुरुष अपने प्रतिभास मात्र देह में तथा देह के उपयोगी प्रपंच में अहंता, ममता, और इदंता, नहीं करता किन्तु स्वयम् आत्म स्वरूप में जागृत होकर स्थित होता है।

उस तत्वज्ञ पुरुष को मिथ्या पदार्थों के समर्थन करने की इच्छा नहीं होती। और नाहीं उनको संग्रह करता है। और यदि उन पदार्थों को वह समर्थन तथा संग्रह करता है तो वह मुक्त ही नहीं है, जैसे स्वप्न के पदार्थों को समर्थन करने वाला निद्रा से मुक्त नहीं होता है। निरन्तर परब्रह्म में आत्म रूप से वर्तमान सर्वत्र में अपने आप को ही देखने वाला विद्वान् सदा आनन्द में स्थित रहता है। जैसे स्वप्न में देखे हुए पदार्थों की स्मृति मात्र होती है तैसे ही विद्वान् के शरीर की क्रिया भोजन तथा शौच आदिक होती हैं।

देह कर्म रचित है इसलिये देह का ही प्रारब्ध हो सक्ता है अनादि अजन्मा जो आत्मा है उसका प्रारब्ध किस प्रकार हो सक्ता है।

प्रारब्ध तभी तक सिद्ध हो सक्ता है जब तक देह में आत्म बुद्धी बनी रहती है, जब देहात्म बुद्धि ही न रही तब प्रारब्ध कहाँ रहा।

वास्तव में तो देह को प्रारब्ध मानना भी भ्रान्ति ही है, क्योंकि अध्यस्त वस्तु का तो सत्व ही नहीं होता है। और जिसका सत्व ही नहीं है उसका जन्म कहाँ है। जिसका जन्म नहीं है, उस का नाश क्या होगा। ऐसे असत् शरीर का प्रारब्ध क्या हुआ अर्थात् कुछ नहीं। भाव यह है कि तत्वज्ञ अर्थात् आत्मदर्शी पुरुष को प्रारब्धादिक कोई प्रकार का कर्म बन्धन नहीं कर सक्ता वह सर्व बन्धनों से मुक्त होता है। उस पर कोई विधि निषेध का नियम नहीं रहता है। वह यदि करता है तो वही कर्म करता है जिसमें आत्मा अभ्यास बढ़े। उस आत्म दर्शी पुरुष को संसार के व्यवहार विषय में कुछ कर्तव्य शेष नहीं रहता है। उस विद्वान् का कर्तव्य दुनिया से निराला ही होता है। कर्तव्य यही है की 'स्वधन संग्रह' अपना आत्म स्वरूप जिसको न जान कर अनात्मा रूप प्रपंच को अपना स्वरूप बना बैठे। इसका फल वही हुआ जो होना चाहिये था जैसे सर्प को रज्जु जान कर पकड़ने वाले का फल होता है। इसलिये वह निरन्तर अपने स्वात्म ध्यान में आरूढ़ रह सके जिस प्रकार उसी प्रकार का कर्म करना उस विद्वान् का कर्तव्य है। ऐसा कर्तव्य जिस कर्म से और जिस साधन से सिद्ध हो वही कर्म करना वह अपना कर्तव्य मानता है। ऐसे विद्वान के मन, वाणी और शरीर द्वारा जो कर्म होता है वह साधारण मनुष्यों की बुद्धि से अगम्य है अर्थात् उस कर्म के रहस्य को जानना कठिन है। उस विद्वान् का कर्तव्य वाणी द्वारा कथन करने को अशक्य है परन्तु शास्त्रों द्वारा तथा सन्त जनों से जो कुछ सुना जाता है वह यत् किंचित् यहाँ लिखा जायगा॥

अपूर्णम्

क्या

(ले० श्री बी० एल सराफ)

कर्मक्षेत्रमें खड़े हुए हैं सत्वर आओ तुम घनश्याम।
योग्य कार्य था करने का जो निभालिया है सो निष्काम॥
आंधी धनके स्वार्थ झकोरों को विदारना है तव काम।
श्याम घनों से सजातीयता निभा न खोना अपना नाम॥
यह भी यदि भावै तुम्हें हमें सुना देना यही।
आत्म समर्पण स्वत्व है कर्म स्वार्थ विरहित यदी॥

यौगिक-जगत्

सब से बड़ा आश्चर्य।

(ले०-श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, औंध

इस विश्व में स्थान स्थान पर आश्चर्य हैं, परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य मनुष्य के व्यवहार में है देखिये-

१—मनुष्य बड़े नगर में रहना चाहता है। छोटे नगर में नहीं रहना चाहता, छोटे ग्राम में रहने से जल-वायु सुगमता से विपुल प्राप्त होने के कारण ग्रामीण मनुष्यों का स्वास्थ्य और आरोग्य अधिक अच्छा होता है। बड़े नगरों में नाना व्याधियां मुफ्त में मिलती हैं, रोग और अस्वस्थ्यता भी ग्रामों की अपेक्षा नगर में अधिक होती है परन्तु सब की दृष्टि ग्रामों को छोड़ कर नगरों के तंग मकानों में घुसने की ओर अधिक रहती है।

२—मनुष्य बड़े अच्छे मकान में रहना चाहता है, जितना व्यय मकान पर किया जाता है। उसका शतांश भी शरीर को दीर्घ जीवी और बलवान करने के लिये नहीं किया जाता।

३—मनुष्य अपने कपड़े लत्ते, नकटाई, कालर बूट, सूट आदि में फेशन करने के लिये जितना व्यय करता है और जितना ध्यान देता है वैसा अपने शरीर का विचार नहीं करता, परन्तु यह नहीं जानता कि शरीर के लिये तो ये भूषण हैं न कि भूषणों और फेशनों के लिये शरीर है। बाहर के पहिनावे के लिये कोई देखता तक नहीं।

४—कोई मनुष्य व्यायाम आदि करके अपने शरीर को सुडौल करते हैं, परन्तु इन्द्रियों को स्वाधीन रखने का यत्न नहीं करते। इससे यह होता है कि इन्द्रियों के दुराचरण में शरीर का नाश होता है।

५—कई लोग विद्याभ्यास आदि द्वारा तथा अन्य विविध प्रकारों के नियम आदि द्वारा इन्द्रियों को स्वाधीन करने का यत्न करते हैं, परन्तु अपने मन को स्वाधीन नहीं रखते, जिसके कारण मन के कुविचारों की आग में शरीर और इन्द्रियाँ भस्म हो जाती है।

६—कई लोग सुविचार और ज्ञान संपादन द्वारा अपने मन को सुसंस्कृत करना चाहते हैं, परन्तु अपनी बुद्धि का ख्याल ही नहीं करते। उनको पता नहीं होता है कि बुद्धि की प्रेरणा से ही सब शरीर के आन्तरिक और बाह्य व्यापार चलते रहते हैं तथा बुद्धि की योग्यता से ही मनुष्य की योग्यता समझी जाती है।

७—यदि कोई मनुष्य बुद्धि को विज्ञान सम्पन्न और शान्त करना चाहता है। तो उसको आत्मा की शक्ति बढ़ाने का विचार तक नहीं होता, वह बुद्धि की योगिक सिद्धियों और चमत्कारों में ही लीन हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि—मनुष्य इतना बहिर्मुख हो रहा है कि उसके अन्दर की अपेक्षा बाहर के पदार्थों का अधिक चिन्ता है। यदि इस जगत् में सब से बड़ा कोई भ्रम है तो यही है। प्रत्येक मनुष्य को सोचना चाहिये कि वास्तव में मुझे किस की आवश्यकता है। मनुष्य के अन्दर निम्न शक्तियां हैं।

(१) 'आत्मा'-सतत पुरुषार्थ करने का धर्म

(२) 'बुद्धि'-अधिकारी शुद्ध ज्ञान धारण करने का धर्म, शक्ति, श्रद्धा, विश्वास आदि का स्थान।

(३) 'मन'—चिन्तन मनन, सारासार विचार करने का धर्म, तर्क वितर्क कुतर्क का स्थान।

(४) 'इन्द्रिय, ज्ञान इन्द्रियां-शब्द, स्पर्श, रूप,

रस, गंध, इन पांच विषयों का ग्रहण करने वाले कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक ये पांच ज्ञानेन्द्रिया हैं।

कर्मेन्द्रिय- शौच द्वार 'उपस्थ' जननेन्द्रिय हाँथ पांव और वाक् ये पांच कर्म करने वाले इन्द्रिया हैं।

(५) 'शरीर'—जिसके अन्दर उक्त इन्द्रियादिक रहते हैं और इनके अतिरिक्त भी बहुत से उत्कृष्ट साधन जिसमें विद्यमान हैं।

(६) 'विषय'—शरीर का उत्तम योगक्षेम चलने के साधन जो सम्पूर्ण जगत् में प्राप्त होते हैं।

सबसे अन्दर आत्मा है और क्रमशः बुद्धि आदि उसके बाहर हैं अन्दर का बिगाड़ हो जाने से बाहर के स्वयं निकम्मे हो जाते हैं इसलिये अन्दर के पदार्थों की ओर विशेष ध्यान से देखना चाहिये। परन्तु जगत् में सर्व साधारण मनुष्य बाह्य पदार्थों का विशेष चिन्तन करते हैं और अन्दर के मुख्य पदार्थों की ओर जाते तक नहीं। यदि जगत् में सबसे बड़ा कोई आश्चर्य है तो यही है।

वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य को उचित है कि वह आन्तरिक शक्तियों को विशेष ठीक करे। परन्तु आन्तरिक शक्तियों का विचार करने वाले बहुत ही थोड़े मनुष्य होते हैं।

उक्त साधारण पुरुषों के मार्ग से भिन्न कई मनुष्य हैं जो बाह्य शक्तियों की ओर उदासीन रहते हुये केवल आन्तरिक शक्तियों का ही ख्याल करते रहते हैं। केवल बाह्य शक्तियों का ख्याल करने वाले जैसे गिरते हैं वैसे ही आन्तरिक शक्तियों के विचार करने वाले भी गिर जाते हैं। दोनों शक्तियां आन्तरिक और बाह्य परस्पर सहायकारी हैं। किसी एक का त्याग करने से हानि है। इसलिये वैदिक धर्म में दोनों का सम विकाश करने की आज्ञा है।

वैदिक धर्म की दृष्टि से आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर, घर, समाज, नगर, राष्ट्र आदि सब का विकाश योग्य रीति से करने की आवश्यकता है। किसी भी एक की ओर ध्यान न देना योग्य नहीं है। सभी अपने स्थान में मुख्य हैं और एक की उन्नति दूसरों की सहायता से होती है। इनकी बांट निम्न प्रकार हैं।

(१) 'निःश्रेयस'—आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय उनकी उन्नति पूर्णता और उनकी शक्तियों का विकाश।

(२) 'अभ्युदय' शरीर, कुटुम्ब, घर, जाति, समाज, नगर, राष्ट्र आदि की उन्नति पूर्णता और इनकी निज शक्तियों का पूर्ण विकाश।

अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस मिलकर धर्म है, इनसे स्वयं पता लग सकता है कि वैदिक धर्म का कार्य्य क्षेत्र कितना सर्वाङ्ग पूर्ण है, अन्य धर्मों में इस प्रकार सम विकाश का भाव नहीं है, किसी में एक बात की अधिकता है तो किसी में दूसरे बात की है। सब बातों पर पूर्णतया समान विचार करने वाला यही एक धर्म है।

परमेश्वर पर दृढ़ विश्वास और मन का सबल निश्चय इन दो साधनों से केवल अपने आरोग्य की प्राप्ति होती है, परन्तु केवल इन्हीं दो साधनों के द्वारा दूसरों को भी आरोग्य दिया जा सकता है। योग साधन का फल है। जितना औषध आदि बाह्य साधनों पर विश्वास अधिक बढ़ेगा उतनी ही आरोग्यता कम होगी। इसलिये मनुष्य को अपनी बाह्य शक्तियों के साथ आन्तरिक शक्तियों के विकाश की ओर भी अवश्य ध्यान देना चाहिए।

मनुष्य आन्तरिक शक्तियों को छोड़ बाह्य जगत् में ही केवल भ्रमते रहते हैं यह सब से बड़ा आश्चर्य है।

प्रार्थना

[ले० श्रीयुत यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव]

प्रार्थना, विन्ती, विनय, निवेदन आदि को कहते हैं। मोटे शब्दों में इसका अर्थ मांगना अथवा याचना भी है। प्रार्थना करना अथवा मांगना अत्यन्त घृणित और नीच कर्म है।

'मांगन मरन समान है, मत कोई मांगो भीख।
मँगन से मरनो भलो, यह सतगुरु की सीख॥
तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो' ता दिन मरन करो॥'

\+ \+ \+

'दस्ते सवाल सैकड़ों ऐबों का ऐब है।' मांगने कारण भगवान को नीचा होना पड़ा था।

'रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण जू को भयो, बावन अंगुर गात॥'

यहां तक कि उनका यह पद भी घट गया था—

'मांगी घटे रहीम पद, कितौ करो बदि काम।
तीन पैंग वसुधा करी, तऊ बावने नाम॥'

फिर मनुष्य बेचारा किस गिनती में है? महात्मा कबीरदास ने ऐसे मनुष्यों की गणना अन्धों में की है और कहा है:—

'ऐसी दिवानी दुनिया, भक्ति भाव नहिं बूझे जी।
कोई आवे तो बेटा मांगे, यही गुसाईं दीजे जी॥
कोई आवे दुख का मारा, हम पर कृपा कीजे जी।
कोई आवे तो दौलत मांगे, भेंट रुपैया लीजे जी॥
कोई करावे ब्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझे जी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इन अन्धों का क्या कीजे जी॥

[२]

मनुष्यों के तीन भेद हैं। अज्ञ, अल्पज्ञ और ज्ञानी। 'अज्ञ' वे हैं जिन्हें आत्मा का ज्ञान नहीं होता। वे मूर्तियों में भगवान होने की भावना करके भगवान् को सीमा बद्ध समझते हैं और उनकी आराधना करके प्रार्थना द्वारा उनसे वरदान माँगते हैं। इनकी दशा 'कूप मराडूक' के समान होती है।

'अल्पज्ञ' वे हैं जो आत्मा और संसार दोनों को सत्य समझते हैं और भगवान् को सर्व व्यापी समझ कर उनसे प्रार्थना करते हैं। वे किसी के उपदेश को नहीं सुनते, सब ही को मूर्ख समझते हैं। इनके सम्बन्ध में [अल्प विद्यो महागर्वी] वाली कहावत चरितार्थ होती है।

'ज्ञानी' वे हैं जिनका अज्ञानान्धकार दूर हो कर ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं और अपने वास्तविक रूप का उन्हें ज्ञान हो जाता है। वे लोग आत्मा को सत्य और संसार को मिथ्या समझते हैं और यह कहते हैं:—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'।

अर्थात्—

'मैं देख्यो निरधार, यह जग काचों कांच सो।
ऐकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहां॥

संसार में रहते हुए भी संसार से दूर रहते हैं, बन्धु बान्धवों में रह कर भी उनमें ममता नहीं रखते, शुभ, अशुभ, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, आदि को कुछ नहीं समझते, सर्व प्राणियों में एक ही आत्मा देखते हैं और ब्रह्म ज्ञान में तल्लीन होकर 'एकोहं द्वितीय नास्ति' की गर्जना करते हैं और यह कहते हैं:—

'नहीं देह इन्द्रिय, न अन्तःकरण।
नहीं बुद्धि अहंकार वा प्राण मन॥
नहीं क्षेत्र घरबार नारी न धन।
मैं 'शिव' हूं मैं 'शिव' हूं चिदानन्द घन॥'

[३]

ज्ञानी लोग आत्म-गौरव को समझते हैं। वे कभी भूल कर भी प्रार्थनाऐं नहीं करते और न किसी से कुछ मांगते हैं। सदा आत्म-शक्ति की सहायता से अपना काम बना लेते हैं।

अज्ञ और अल्पज्ञ ही अज्ञानतावश प्रार्थनाऐं करते हैं परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं होती। सौ में कहीं दो चार प्रार्थनाऐं सफल होती हैं उनकी सफलता का रहस्य इस प्रकार है।

जब मन में कोई इच्छा उदय होती है तब वह उसके पूर्ण करने का उद्योग करता है। उद्योग अर्थात् पूजा, पाठ जप, तप, प्रार्थना इत्यादि करते करते जब वह थक जाता है और एक केन्द्र पर-स्थित हो कर आत्मा की ओर झुकता है उस समय आत्मा की छाया उस पर पड़ती है और उसका मनोरथ पूर्ण होता है। या यों समझिये कि जब तक मन से साधना का अहंकार दूर नहीं होता और मन मलीन रहता है तब तक सफलता प्राप्त नहीं होती। सफलता के लिये मन का निर्मल होना अत्यावश्यक है।

'मन आभूषण कनक सम' मलिन गर्व तें होय।
बिन त्यागे अभिमान के, निर्मल होय न सोय॥'

मन का एक केन्द्र पर स्थित होकर आत्मा की ओर झुकना और आत्म प्रतिबिम्ब से आच्छादित होना ही एकाग्रता कहलाती है। इस दशा में मन निर्मल रहता है और भगवान की शरण प्राप्त करलेता है।

यह दशा जितनी गहरी, घनी और दृढ़ होती है उतनी ही शीघ्रता और अधिकता के साथ सफलता प्राप्त होती है।

इस दशा के टिकाऊ होने पर भगवान के दर्शन भी मिलते हैं।

सर्व साधारण को इस का ज्ञान नहीं है। परन्तु मूल तत्व यही है। उनका यह कहना कि प्रार्थना करने से मनोरथ पूर्ण होते हैं भ्रम है। यथार्थ में एकाग्रता ही सफलता की कुञ्जी है। इसी से विद्वान् लोगों ने एकाग्रता पर अधिक जोर दिया है और कहा है–

'तन को योगी सब करें, मन को विरला कोय।
सहजे ही सब पाइये, जो मन योगी होय॥'

[४]

त्रिकुटी अर्थात् दोनों भ्रुवों के बीच में तिलक लगा कर उस स्थान को खूब याद करलो और वहीं ध्यान जमाकर कोमल मधुर ध्वनि तथा आनन्द युक्त मन से 'ओम्' 'ओम्'–इस प्रकार जपो। नदी का किनारा या अन्य कोई एकान्त स्थान मिले और सांझ सवेरे घण्टे दो घण्टे जम कर जप करो तो फिर कहना ही क्या है? सोने में सुहागे का काम करता है।

'ओम्' यह महामन्त्र और ईश्वर का नाम है। यह सब को प्यारा है।

'यही है नाम ईश्वर का, यही सब को पियारा है।
ऋषी मुनियों के जीवन का यही केवल सहारा है॥'

इसी को कल्पवृक्ष कहते हैं। इसकी छाया में रहने से मनुष्य के संपूर्ण मनोरथ पूर्ण होते हैं। इसकी शक्ति अपार और महिमा अपरम्पार है। इसके द्वारा विघ्न बाधाऐं दूर होती हैं और मनुष्य सब कुछ प्राप्त करलेता है। जो काम दुःसाध्य

तथा अगम्य होता है वह इसके जप से सहज ही में हो जाता है। कहा भी है:-

'नदी किनारे घर करो, कबहु न लागे प्यास।'

इसलिये चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते पीते तथा काम-काज करते हुये इसका जप करना चाहिये। कलियुग में कल्याण का केवल यही एक मार्ग है।

'कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि भव उतरो पारा॥'

वर्षा ऋतु आगमन

(रचयिता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम,)

सूखी बनबेली सो नवेली भई है आज,
दुमन दलन बिच छाई सरसाई है।
डार २ छदन के बोलते नमितभई,
छौरि २ झूमकन भूमि नियराई है॥
हिय में हुलास भरि चातक ने प्यास भरि,
घुमक २ नभ घन घटा छाई है।
बोलत मयूर शुक सारिका विपिन माहिं,
सबहि सुखद अति वर्षा ऋतु आई है॥

२

भरे हैं तड़ाग अति रागमय वारिसों,
भये हैं मगन नर नारि औ नगर के।
कूप नद नाले सब प्याले से भरे हैं आज,
पीवत हैं लोग सब चुल्लू भर भर के॥
कूकत हैं मोर ठौर २ से उमंग भरि,
कहुं २ कोयल करत सुर भर के।
छायो है उमग रंग भंग की तरंग जैसे,
प्रीतम से जाय मिलूं चरन पकर के॥

यज्ञ का फल

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

महान् ईश्वर के लिये पवित्र यज्ञ करने का आदेश शास्त्र में दिया हुआ है, इससे यज्ञ क्या है उसका हेतु क्या है? यह हमें समझलेना चाहिये। महत्मागण कहते हैं कि जिसने हमारे ऊपर अनन्त उपकार किया है ऐसे कृपालु महान ईश्वर के लिये हमसे जितना हो सके बड़े से बड़ा त्याग करना चाहिये, इसी का नाम यज्ञ है। यह त्याग धन का हो चाहे मान का हो, इन्द्रियों के सुख छोड़ने का हो, अथवा सर्वस्व अर्पण करके प्रभुमय होने का हो। अर्थात् किसी भी प्रकार का बड़े से बड़ा त्याग करने का नाम यज्ञ है। जगत् कर्ता, जगत् भर्ता, जगत का साक्षी रूप, जगत् का आश्रय रूप मोक्ष-दाता पवित्र पिता के लिये अपने सुख के उस भोग को अर्पण करना चाहिये जो जीवन की कसौटी हो।

ऐसे महायज्ञ से जीव का ईश्वर पर प्रेम बढ़ सकता है, भाई बहिनों का भला हो सकता है, उनका आशीर्वाद मिल सकता है और इससे यज्ञ करने वाले के हृदय में नये बल का संचार होता है। ऐसे महायज्ञ करने वालों का पुरुषार्थ बढ़ता है, इससे वे धर्म के मार्ग में वेग से आगे बढ़ सकते हैं, और ऐसे महायज्ञ से ईश्वर की भिन्न भिन्न शक्तियाँ जिन्हें देवता कहते हैं प्रसन्न होती हैं जिससे यज्ञ करने वाले का सरलता से कल्याण हो सकता है। यही सब यज्ञ करने का कारण व फल है, इससे सब को यथा शक्ति, जो कुछ बन सके, यज्ञ करने का शास्त्र ने आदेश दिया है। इसी प्रकार महा मंगलकार, शान्ति दाता, आनन्द स्वरूप, महान् ईश्वर का गुण गान करने से भी ऐसे ही फल प्राप्त होते हैं और इसमें उतना अधिक त्याग

करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। इससे यज्ञ करने की अपेक्षा प्रभु का गुण गाना अधिक उत्तम है, क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकार के साधन वालों में किसी किसी से ही यज्ञ हो सकते हैं हर एक से नहीं, किन्तु प्रभु का गुण गान सब से सरलता पूर्वक हो सकता है। इससे शास्त्र में कहा है कि जिसकी कीर्ति अनन्त ब्रह्माँड में व्याप रही है ऐसे सर्व शक्तिमान महान् ईश्वर का गुण गाने से यज्ञ करने का फल मिलता है।

इसलिये मेरे प्रिय भक्तो! मेरे प्यारे आत्मा प्रिय पाठको! महान मंगलकारी शांति दाता परमात्मा का गुण गान करो।

आनन्द का उपाय

[ले० श्री० गोपालप्रसाद जी शर्मा]

प्यारे भगवद्भक्तो! प्राणी मात्र पर प्रेम दृष्टि रखो किसी का भी अहित मत चाहो और चिंता, शोक, मोहादिक का त्याग करके आनन्द, निर्भयता, श्रद्धा आदि विचारों का चिंतवन किया करो। शरीर मल रहित दिखाई दे। मुख तेजस्वी दिखाई दे। इसके लिये संशय का बिलकुल ही त्याग करदो। क्योंकि मुख पर जो भाव दिखाई देते हैं वे हृदय के विचार के ही परिणाम होते हैं। शोकातुर का मुख मलीन दिखाई देता है। क्रोधी की आकृति भयानक दिखाई देती है। चिंतातुर की प्रकृति शून्य दिखाई देती है। ऐसे मनुष्य यदि मुख से मीठी वाणी भी बोलें तो भी उनके मुख की ओर देखने से मोह उत्पन्न नहीं होता किन्तु इनके विरुद्ध भगवदीय महा पुरुषों के मुख की ओर देखने से अच्छे विचार हृदय में उदय होते हैं और उनकी सौम्य तेजस्वी मुख मुद्रा देखने से उनके प्रति प्रीति उत्पन्न होती है क्योंकि उनका ओजस सहज ही उनके प्रभाव को दरसाता है। महा पुरुषों की गंभीर मधुर वाणी हृदय को आनन्द सागर में बोरे देती है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य जैसे विचार करता है वैसा ही होजाता है।

भय दो अक्षर वाला शब्द है और यह सब के हृदय में रहता है। भय और क्रोध बढ़ने पर देहका रक्ताश्रय वेग से दौड़ने लगता है और श्वास प्रश्वास की क्रिया जोर से होने लगती है। मुख विकराल हो जाता है लाल हो जाता है। आत्मदृष्टि यही विद्या-ज्ञान और सुख का मार्ग है। अनात्मदृष्टि यही अविद्या और दुःख का मार्ग है। ज्ञान, उदारता, प्रेम, आनन्द, निर्भयता, श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य, आग्रह, उत्साह आदि आत्मा के लक्षण हैं और दुष्टता, दुर्जनता, निरुत्साह, चिंता, भय, शोक, द्वेष, ईर्षा, असूया, लोभ, क्रोध, मोह, अभिमान, खलता, उन्माद, आलस्य, विकलता, आदि अनात्मा के लक्षण हैं।

बालक में अपराध दिखाई दे। मित्र में खलता कुटिलता दिखाई दे। बन्धु में द्वेष ईर्षा दिखाई दे तो उस समय उनके किये हुए सद्गुण का विचार करके उनकी प्रशंसा कर उनको प्रेम के प्रवाह में बोर के उन्हें आनन्दित करोगे तो तुम्हारा अन्तःकरण उच्च हो जायगा। जो तुम आत्मा में अत्यन्त वेग से विकाश होने का अनुभव करोगे और आत्मा में रहने वाली कोई एक अलौकिक विलक्षण दैवी शक्ति का अनुभव करोगे तो अज्ञान जड़ से नाश होकर तुम्हें साक्षात् परमानन्द का अनुभव होगा इसलिये यह सच्चे सुख का मार्ग होने से किसी के भी दोष को न देखो। किसी की भी निन्दा मत करो।

कटु वचन मत बोलो और अपने हृदय में आत्मा के लक्षण को प्रकाशित करके औरों के भी हृदय में प्रकाशित करने की चेष्टा करो तो नट नागर विहारीलाल हंसते २ तुम्हारे हृदय में आ विराजेंगे।

श्रुति-सार

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते। अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८ ॥

तप से ब्रह्म जाना जाता है उससे अन्न का आविर्भाव होता है अन्न से प्राण, उससे मन, मन से सत्य लोक, लोकों में कर्म कर्मों में उनके फल यथा क्रम उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

यः सर्वज्ञः सर्ववित्यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥

जो अक्षराख्य परमात्मा सामान्य रूप से सर्व वेत्ता में और विशेष रूपेण सब वेत्ता है जिस का सृष्टि को जानना ही तप है। उसी से यह हिरण्यगर्भाख्य सूर्य चन्द्रादि सब भुवन नाम रूप वाला कार्यान्तर जगत् और अन्न उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

इति प्रथम मण्डुके प्रथम खण्डः

अथ प्रथम मुण्डके द्वितीय खण्डः।

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्था सुकृतस्य लोके ॥ १ ॥

यह बात सत्य है कि मन्त्रों में जिन अग्नि होत्रादि कर्मों को वेदवेत्ता देखते थे वह कर्म त्रेता में अनेक तरह से विस्तृत थे उन कर्मों का हे सत्य कामनाओं वाले लोगो नियम पूर्वक आचरण करो क्योंकि यही तुम्हारा इस मानव देह में पुण्य रूप कर्मों का मार्ग है ॥ १ ॥

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने तदाज्य भागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् ॥ २ ॥

निश्चय करके जब समिधाओं में अग्नि के प्रदीप्य होने पर अग्नि की ज्वाला लपटें मारती हैं तब आज्य भाव नामक दो आहुतियें क्रम से मध्य में देवे श्रद्धा से किया हुआ हवन फल दायक होता है ॥ २ ॥

यस्याग्निहोत्र मदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च। आहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुत मासप्तमांस्तस्य लोकान्हिनस्ति ॥ ३ ॥

जिसका अग्नि होत्र दर्शेष्टि से रहित चतुर्मासेष्टि से रहित शारदादि ऋतुओं में जो इष्टि की जाती हैं उन से वर्जित जो समय पर नहीं किया जाता जो बलि वैश्वदेव कर्म से रहित है और जो अविधि पूर्वक हवन है वह उस यजमान के सात लोकों तक नाश कर देता है ॥ ३ ॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिहाः ॥

काले वर्ण वाली भयङ्कर रूप वाली और मन जैसे शीघ्र वेग वाली और रक्त वर्ण वाली और

जो धूम्र के समान, वर्ण वाली और कृष्ण आदि सर्व वर्णों (रंग) से युक्त वह दिव्य रूप प्रकाश मान सात जिह्वा हैं ॥ ४ ॥

भजन

पारब्रह्म परमेश्वर पुरुषोत्तम परमानन्द।
नन्दनन्दन यशोदा आनन्दकंद श्री गोविन्द ॥ टेक ॥
करुणामय कमलनैन, कृपासिन्धु सर्व चैन।
पूरण करता किशोर गुण निधान गोकुलचन्द ॥ १ ॥
दीनानाथ दुख भंजन, भक्त वछल जगवन्दन।
जग जीवन जगत् नाथ ब्रजपति हर दीनबन्धु ॥ २ ॥
राम रूप राधावर गोवर्धन कर पर धर।
रंगनाथ हृषीकेश गावत गुण भये आनन्द ॥ ३ ॥
मधु सूदन मदन मोहन, मुरलीधर सर्व सोहन।
वासुदेव बनवारी काटो दुख द्वन्द फन्द ॥ ४ ॥
जन गरीब यश सुन सुनलाग रही अन्तर धुन।
केशव बनवारी ब्रजपति गोकुल चन्द ॥ ५ ॥

२

माई मैंनें गोविन्द लीना मोल ॥ टेक ॥
कोई कहे सस्ता कोई कहे महंगा, लिया तराजू तोल॥
ब्रज के लोग करें सब चर्चा, लिया बजाके ढोल ॥
सुर नर मुनी जाको पार न पावें, डकलिया प्रेमपटोल ॥
जहर प्याला राणाजी भेज्यो, पिया मैं अमृत झोल॥
मीरां प्रभु के हाथ बिकानी, मैं सर्वस दिया घोल ॥

३

नहिं बिसरत छवि नागर नट की ॥ टेक ॥
बांकी चलत चितवन वहबांकी,
अलबेली छवि मोर मुकुट की ॥
कंह वह बंशी कनक लकुटिया,
वह कछनी कटि पीले पटकी ॥
कंह राधासंग ललिता विशाखा,
शरद रैन कालिन्दी तटकी ॥
वह रसरास कोनि वृन्दावन,
रास सभा वह वंशी वट की ॥
सुमर २ परताप छवि भाव,
सब गतिमति चरनन में अटकी ॥

४

काहे रे वन खोजन जाई ॥ टेक ॥
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोहि संग समाई ॥
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर मांह परछाई ॥
तैसे ही हरि बसैं निरन्तर, घट ही खोजो भाई ॥
बाहर भीतर एक जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ॥
जन नानक बिन आपा चीने, मिटे न भ्रम की काई ॥

५

उडीसा जगन्नाथपुरी में ठाकुर भले विराजे जी ॥टेक
बुढ़िया मांगे खीचरी बंगालिन मांगे भात।
साधू मांगे दर्शन, महा परसाद ॥ १ ॥
गाँव २ में बाग बगीचा, गली २ फुलवारी।
घर २ देखो केला नारियल, घर हों ठाकुर बारी ॥२॥
छोटी मोटी बंगालनि बेटी, लांबी बाकी चोटी।
भाव भक्ति के मर्म न जाने, गरदन बाकी मोटी ॥३॥
सोलह गजकी सारी पहनें, ताकर जरद किनारी।
ससुर भैंसुर की लाज न राखे, आधी टांग उघारी ॥
अठारह नाला रोक दीन्हा, यात्री जान न पावे।
हुकम भयो बलभद्र जी को, बहियां पकर मंगावे ॥
वृन्दावन में रास कीन्हों, पुरी को सिधारे।
बौध रूप होके प्रभु बैठे, सिन्धु के किनारे ॥६॥
लालचक्र पर ध्वजा विराजे, मस्तक शोभे हीरा।
ठाकुर आगे दासो नाचे, गावे दास कबीरा ॥ ७ ॥